Initiative / Supported by
Ministry of Human Resource Development Government of India
MHRD

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

NATIONAL BOOK TRUST, INDIA

Ministry of Human Resource Development, Govt. of India

LOW COST — SUBSIDISED — L C S E — EDITIONS — NBT. INDIA

पुस्तकों के प्रकाशन के लिए सब्सिडी योजना

SCHEME FOR THE SUBSIDISED PUBLICATION OF BOOKS

योजना के मुख्य आकर्षण ◆ HIGHLIGHTS OF THE SCHEME

- भारतीय विश्वविद्यालयों और तकनीकी संस्थानों के छात्रों और शिक्षकों के लिए उचित मूल्य पर स्वीकार्य मानक की पुस्तकों के उत्पादन के लिए लेखकों एवं प्रकाशकों हेतु सब्सिडी।
- भारतीय विश्वविद्यालयों में स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर तथा तकनीकी शिक्षण संस्थानों में डिप्लोमा स्तर की विषयोन्मुख अनुपूरक पठन–सामग्री, पाठ्य पुस्तकों तथा संदर्भ पुस्तकों के लेखकों व प्रकाशकों हेतु सब्सिडी।
- हिंदी, अंग्रेजी तथा 21 अन्य भारतीय भाषाओं यथा असमिया, बांग्ला, गुजराती, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मलयालम, मराठी, नेपाली, ओडिया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, तमिल, तेलुगु, उर्दू, बोड़ो, संथाली, मैथिली, डोगरी, मणिपुरी में प्रकाशन हेतु सब्सिडी।
- प्रकाशकों हेतु : पुस्तकों के उत्पादन की कुल लागत का 50% अनुदान/सहायता।
- लेखकों हेतु : प्रकाशित मूल्य का 20% रॉयल्टी।

- Financial assistance to authors and publishers for producing books of an acceptable standard at reasonable price for students and teachers of Indian universities and technical institutes.
- Designed for publishers and authors of textbooks, reference books and discipline-oriented supplementary reading material at the undergraduate and postgraduate level in Indian universities and diploma level in technical institutes.
- Subsidy for publication in Hindi, English and 21 other Indian languages namely Asamiya, Bangla, Gujarati, Kannada, Kashmiri, Konkani, Malayalam, Marathi, Nepali, Oriya, Punjabi, Sanskrit, Sindhi, Tamil, Telugu, Urdu, Bodo, Santhali, Maithili, Dogri and Manipuri.
- For publishers: 50% subsidy on total cost of production of books.
- For authors: 20% royalty on published price.

अधिक जानकारी हेतु हमारी वेबसाइट :
www.nbtindia.gov.in देखें।

For Details please visit our website:
www.nbtindia.gov.in

प्रधान संपादक
प्रो. बल्देव भाई शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
अल्पना भसीन, प्रज्ञा रश्मि

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा
नरेंद्र कुमार

उत्पादन
अनुज भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
मनीष वर्मा

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार, नीलकमल अरोड़ा

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 35.00
वार्षिक : ₹ 125.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक सतीश कुमार द्वारा
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत)
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., ओखला, नई दिल्ली से मुद्रित।

संपादक : पंकज चतुर्वेदी

सर्वाधिकार सुरक्षित :
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की त्रैमासिकी

वर्ष-3; अंक-3; जुलाई-सितंबर, 2018

>> 'बाल साहित्य' विशेषांक <<



इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. बल्देव भाई शर्मा* — 2

पाठकीय प्रतिक्रिया — 3

आलेख — **आज के परिदृश्य में बच्चे और लेखक** —*क्षमा शर्मा* — 4

आलेख — **अनूठे बाल साहित्यकार और कुशल वाचक : अमृतलाल नागर** —*डॉ. नागेश पांडेय 'संजय'* — 8

कहानी — **एक स्कूल मोरों वाला** —*प्रकाश मनु* — 11

आलेख — **बच्चे : साहित्य और कला क्षेत्र** —*डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा* — 15

चित्रांकन — **बाल साहित्य : आधे अधूरे चित्र** —*मनोहर चमोली 'मनु'* — 18

लेख — **हिमाचली बच्चों के खेल** —*पवन चौहान* — 21

आलेख — **भाषा की कक्षा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अवसर** —*प्रमोद दीक्षित 'मलय'* — 25

विज्ञान — **विज्ञान, गतिविधि और बाल साहित्य** —*डॉ. मनीष मोहन गोरे* — 28

कहानी — **जूतों का साथ** —*रेनू सैनी* — 31

विमर्श — **भूत-प्रेत और परीकथाओं की प्रासंगिकता** —*डॉ. शकुन्तला कालरा* — 34

कहानी — **कोई तो मदद करो** —*देवेंद्र कुमार* — 37

लेख — **बच्चों की पुस्तकों का अनुवाद– समस्या व चुनौती** —*सुमन बाजपेयी* — 39

लेख — **वीर स्थली का सिंह नाद** —*शशि पाधा* — 42

कविता — **नानू को समझाओ** —*दिविक रमेश* — 45

• **स्कूल जाता बच्चा** • **हमारे बच्चे** —*परमेंद्र सिंह* — 45

• **हवा में कविता** • **बजते-बजते बजी बाँसुरी** —*श्याम सुशील (श्यामसिंह सुशील)* — 46

पुस्तक समीक्षा — 47

पुस्तकें मिलीं — 59

साहित्यिक गतिविधियाँ — 61



भारतीय चिंतन में जल भी देवता

पावस का प्रारंभ और बाल साहित्य पर केंद्रित अंक, तो वर्षा ऋतु के आगमन के पूर्व पृथ्वी पर जीवन के लिए अनिवार्य तत्व जल की चर्चा समाचीन है। भारत में वेद-पुराणों से लेकर आधुनिक साहित्य तक में कई तरह से पानी के महत्त्व को बताया गया है। भारतीय चिंतन में जल को देवता माना गया है और उसके पूजन-संरक्षण का भी संदेश दिया गया। वरुण और इंद्र जल के देवता कहे गए हैं। उपनिषद में बालक आरुणि की कथा बड़ी प्रेरक व रोचक है। इसमें गुरु के प्रति भक्ति व आज्ञापालन की सीख है कि कैसे जल को बरबाद होने से बचाने के लिए आरुणि ने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की।

गुरु उद्दालक के आदेश पर आरुणि खेतों में फसल की सिंचाई के लिए पानी दिए जाने की निगरानी के काम में लगा था। शीत का समय, खेतों में पानी भरते-भरते रात होने लगी। आश्रम में सभी सोने चले गए, लेकिन आरुणि निगरानी में लगा था। अचानक आरुणि ने देखा कि पानी खेत की मेड़ तोड़ कर बाहर जाने लगा। आरुणि ने मिट्टी डाल कर उसे रोकने का प्रयास किया, लेकिन पानी का बहाव तेज होने से बार-बार डालने पर भी मिट्टी बह जाती थी। आरुणि चिंतित हुआ कि गुरु ने जो काम सौंपा उसकी देखरेख ठीक से न करने का दोष तो उसे लगेगा ही, फसल की भी बरबादी होगी और पानी भी बरबाद होगा। अंततः आरुणि ने स्वयं उस जगह पर जमीन पकड़ कर लेट गया जहाँ से पानी तेजी से बाहर जा रहा था। पानी तो रुक गया लेकिन भयंकर शीत भरी रात में वह बेसुध हो गया। उधर, प्रातः जब सभी जागे तो गुरु ने आरुणि को नहीं देखा। काफी खोजबीन के बाद भी उसका अता-पता नहीं चला। गुरु को ध्यान आया कि आरुणि को खेतों में पानी देने की देख-रेख पर लगाया था। वहाँ जाने पर जो देखा तो सभी अचंभित हो उठे। खेतों में पानी तो सही-सलामत भरा जा रहा था लेकिन आरुणि टूटी मेड़ के बीच बेसुध पड़ा था, ठंड और पानी से उसका शरीर नीला पड़ गया। उसे आश्रम में लाकर गुरु ने उपचार किया, कुछ समय बाद आरुणि स्वस्थ होकर उठ बैठा। गुरु ने पूछा तुमने ऐसा क्यों किया, आरुणि ने बड़ा मासूम-सा उत्तर दिया कि आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मुझे कोई उपाय नहीं सूझा तो मैं खुद लेट गया। गुरु की आँखें छलछला आईं ऐसा शिष्य पाकर। यही आरुणि बड़ा होकर ऋषि के नाम से विख्यात हुआ और नचिकेता इन्हीं का पुत्र था।

आदमी की प्यास से लेकर खेतों की सिंचाई और पशु-पक्षियों के जीवन, इन सबकी पानी के बिना कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए कहा जाता है कि जल ही जीवन है। आशंकाएँ तो यहाँ तक व्यक्त की जाती हैं कि यदि दुनिया में तीसरा विश्वयुद्ध हुआ तो वह पानी के लिए ही होगा, पानी का संकट केवल भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में छाया हुआ है।

नदियाँ सूख रही हैं, तालाबों को मिट्टी से भर कर उस जमीन का अतिक्रमण कर बेरोकटोक भवन बनाए जा रहे हैं, जल स्रोत लगातार घट रहे हैं और धरती के गर्भ का पानी और नीचे खिसकता जा रहा है यानि उसकी मात्रा निरंतर घट रही है। इन स्थितियों का फायदा उठा कर पानी का निजी कारोबार बढ़ रहा है। अब तो रेस्टोरेंट और होटलों में भी नाश्ते-खाने के बाद पानी पैसे देकर खरीदना पड़ता है। जगह-जगह प्याऊ लगा कर लोगों की प्यास बुझाना कभी पुण्य का काम माना जाता था, आज प्याऊ कहीं दिखते नहीं हैं। पहले शहरों-कस्बों में पशु-पक्षियों के लिए भी कई जगह लोग पानी का इंतजाम करते थे। गरमी में तो ऐसे दृश्य आम थे, लेकिन आज यात्रा के समय रेल या बस स्टेंड पर पीने के लिए भी पानी खरीदना तो लगभग हर यात्री की मजबूरी-सी हो गई है।

हमारे पूर्वज ऋषि, शास्त्रकार दूर दृष्टा थे, इसीलिए उन्होंने जल के महत्त्व को बार-बार रेखांकित किया ताकि हम जीवन में पानी की जरूरत और उपलब्धता को समझें और उसे अशुद्ध करने व बरबाद होने से बचाएँ। श्री गुरुवाणी में कहा गया है, 'पवन गुरु पानी पिता माता धरती महत' पर्यावरण संरक्षण का इससे स्पष्ट संदेश और क्या हो सकता है? लेकिन आदमी की भौतिकवादी सोच और अकूत सुविधाओं में जीने की लालसा ने प्रकृति, पर्यावरण सबको विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया। हवा साँस लेने लायक नहीं बची है। पानी पीने लायक नहीं बचा है। पहाड़ सुलग रहे हैं, वन नष्ट हो रहे हैं, नदियाँ या तो सूख रही हैं या विषैली हो रही हैं और पर्यावरण संतुलन बिगड़ते जाने से धरती की छाती भूकंपों से प्रकंपित है। दुनिया में समुद्रों का जल स्तर बढ़ते जाने के खतरे के कारण एक बड़ी आबादी के डूबने की भी आशंका बनी रहती है।

कुल मिला कर ये सब तो मानवता के लिए ही संकट हैं। जो इसी पश्चिमी सोच से पैदा हुए हैं कि सब कुछ मनुष्य की असीमित माँग के लिए बना है, इसलिए अपनी सुख-सुविधा के लिए जितना प्रकृति का, उसके संसाधनों का दोहन हो सकता है, उतना करो। इसके लिए ज्यादा से ज्यादा धन कमाओ और उसे सुविधाओं पर खर्च करो। ए.सी, कार जैसी सुविधाएँ भी कार्बन उत्सर्जन के कारण इतनी खतरनाक होती जा रही हैं कि उनसे मिलने वाली सुविधा फीकी पड़ रही है। बिजली-पेट्रोलियम पदार्थों का बेतहाशा उपभोग दूसरों के लिए कितना बड़ा संकट पैदा कर रहा है, यह शायद ही कोई सोचता हो। पानी की ऐसी कमी के बावजूद कारों की धुलाई में साफ पानी की बरबादी क्या किसी के दिल में चुभती है? हमारे वेद, पुराण, उपनिषद सबमें यही संदेश है कि प्रकृति का संरक्षण करो। प्रकृति मनुष्य की जरूरतें तो पूरी कर सकती है, लालसाएँ नहीं। हमारी लालसाएँ इतनी बढ़ गई हैं कि हम अपने धन के बल पर दूसरों की जरूरतों का हिस्सा भी हड़प लेते हैं। अगर आधा गिलास पानी चाहिए तो उतना ही लें। आधे गिलास की जरूरत होने पर पूरा गिलास भर कर पानी लेना और फिर पीकर पानी फेंक देना सचमुच अपराध है। ऐसा अपराध जिसकी कोई सजा भले न हो, पर मन तो कचोटता ही है।

यह संवेदना जगाना बहुत जरूरी है, बच्चों को भी पानी के उपयोग के बारे में शुरू से ही सिखाया जाना चाहिए। हम कितने ही धनाढ्य हों पानी को बरबाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि प्रकृति के संसाधन सबके लिए हैं, उनके लिए भी जो साधनहीन हैं। प्रकृति की परवाह नहीं करोगे, अपने धन के अहंकार में उसे मात्र उपभोग की वस्तु समझोगे तो वह मानवजाति को ही नष्ट कर देगी। जीवन को संयमित रख कर जीने और दूसरों के हिस्से का कुछ भी स्वयं उपभोग न करने की सीख देने के लिए ही भारत का अध्यात्म है। इसलिए गहराते जल संकट के दौर में पानी को बचाने और उसके संरक्षण की हर स्तर पर कोशिश होनी चाहिए। लगातार घटती बारिश से निबटने के लिए वर्षा-जल का संरक्षण किया जाना बेहद जरूरी है ताकि न केवल जल का संचय हो बल्कि उसके असर से धरती का सूखता जल स्तर बढ़े।

(प्रो. बल्देव भाई शर्मा)

*प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति***

पाठकीय प्रतिक्रिया



'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून 2018 का अंक मिला। हिंदी साहित्य जगत में पाठकों और रीडरशिप की कमी पर चर्चा होती रही है, ऐसे में यह पत्रिका नए संदर्भ और आयाम गढ़ती है। होने को तो इस पत्रिका में साहित्य की विभिन्न विधाओं, जैसे—कविता, कहानी, व्यंग्य, लेख, विज्ञान साहित्य आदि को स्थान मिला है, परंतु हिंदी में प्रकाशित कहानी संग्रह, उपन्यास, कविता संग्रह, जीवनी, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, जीवन विज्ञान, कला आदि की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षा को विशेष स्थान मिला है। लगभग 15 पृष्ठों में पुस्तकों की समीक्षा की गई है। यह भिन्न रुचियों के पाठकों और पुस्तक प्रेमियों के लिए विशेष महत्त्व के पृष्ठ हैं। हिंदी साहित्य में 'पुस्तक संस्कृति' के बढ़ोत्तरी के लिए किए गए आंचलिक, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर हुए आयोजनों की जानकारी भी मिली। पुस्तक साहित्य को समेटे है, पर इसमें कला संस्कृति को भी समायोजित किया जा सकता है। इसमें रंगमंच का अपना महत्त्व है, उसे भी पुस्तक में जगह दी जा सकती है।

भारत शर्मा, नई दिल्ली

'पुस्तक संस्कृति' के पहले अंक से ही मैं इसे देख रही हूँ, हर अंक में इसमें निखार और नई सामग्री देखने को मिल रही है। देश में कहानी-कविता प्रकाशित करने वाली तो कई पत्रिकाएँ हैं, लेकिन लेखक को नया लिखने को प्रेरित करने का यह एकमात्र मंच है। खासतौर पर नई पुस्तकों की जानकारी आज के समय की माँग है। हर बार लगभग 50 पुस्तकों का परिचय मिल रहा है, इससे पाठक को अपनी पसंद की पुस्तकें चुनने का सशक्त विकल्प मिला है। यही अनुरोध है कि पुस्तक संबंधित गतिविधियों को और स्थान दें, समसामयिक साहित्य के स्थान पर वैचारिक आलेख, वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने वाली सामग्री अधिक से अधिक दें।

वंदना यादव, द्वारिका, नई दिल्ली

पत्रिका के अप्रैल-जून 2018 अंक की वैसे तो सभी सामग्री, अपने-आप में अनूठी है, लेकिन संपादकीय आलेख—'ज्ञान, विद्या, संस्कार और विवेक का पथ' ने मेरे जीवन में सकारात्मक ऊर्जा के संचार के लिए उत्प्रेरक का काम किया। 'शब्दों के शैदाइयों के दो तीर्थस्थल' दिल्ली की पुरानी पुस्तक दुकानों पर एक शानदार फीचर था। ऐसे ही देशभर की पुस्तक दुकानों, पुस्तकालयों आदि पर हर बार सामग्री दें। 'सरहपादः हिंदी के प्रथम कवि' की जानकारी तो विलक्षण थी।

सुबोध खंडेलवाल, पत्रकार, इंदौर

'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून 2018 अंक समय पर प्राप्त हुआ। प्रो. बल्देव भाई शर्मा का जीवन मूल्यों से युक्त संपादकीय बहुत प्रभावित करता है। ज्ञान के साथ संस्कार और विवेक की आवश्यकता की सोदाहरण विवेचना पढ़ते हुए लोकमंगल के पथ पर चलने की सहज अनुभूति अभिभूत करती है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में भारतीय जीवन दृष्टि जोड़ने का आग्रह इसकी प्रासंगिकता में वृद्धि करता है। प्रो. बल्देव भाई को साधुवाद। डॉ. कमलकिशोर गोयनका द्वारा प्रेमचंद की 'कफन' कहानी की सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या सार्थक है। सुदर्शन वशिष्ठ का आलेख पुस्तक संस्कृति की ओर सहज ही हाथ पकड़कर ले जाता है और देवेंद्र दीपक का तीखे तेवरों से युक्त व्यंग्य समसामयिक समाज की नब्ज़ पर गहरी पकड़ के साथ पत्रिका को समृद्ध कर रहा है। अन्य सभी स्तंभों में आलेख, कविता, समीक्षाएँ रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। पुस्तकें मिलीं स्तंभ बेहतरीन है। बहुत सारी पुस्तकों की संक्षिप्त जानकारी सही पुस्तक के चयन में सहायक होती है। इतनी समृद्ध सामग्री युक्त पत्रिका का पाठक तक समय पर पहुँचना भी उल्लेखनीय है। नेशनल बुक ट्रस्ट को इस सार्थक संयोजन हेतु हार्दिक बधाई।

डॉ. मीनाक्षी स्वामी, इंदौर

'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून 2018 का अंक प्राप्त हुआ। 'अब्दुल्ला का त्योहार' (डॉ. मीनाक्षी स्वामी) कहानी मन पर गहरी छाप छोड़ गई। बहुत दिनों बाद ऐसी कहानी पढ़ी, जो पाठक को अपने प्रवाह में बहा ले जाने में सक्षम है। 'पुस्तक संस्कार' विचारणीय लेख है। सब तंत्र होने पर भी पुस्तक महत्त्व निर्विवाद है। पुस्तक पढ़ते समय अर्थ का चित्र मानस-पटल पर बनता है। अन्य माध्यमों ने हमारी बहुत-सी शक्तियों को कुंद कर दिया। चाँद शैरी की गज़लों में 'सहमी-सहमी है सड़क पर ज़िंदगी' अच्छी लगी। विवेक शुक्ल का लेख शब्दों के शैदाइयों के माध्यम से छोटे शहरों के छोटे-छोटे पुस्तक-विक्रेताओं की याद दिला गया, जो अच्छी किताबें पाठकों तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध थे। सुधांशु गुप्ता, अनुराग चतुर्वेदी, डॉ. कविता भट्ट और स्वराज सिंह की समीक्षाएँ पठनीय हैं।

रामेश्वर काम्बोज, नोएडा (उत्तर प्रदेश)

'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून 2018 अंक प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह पत्रिका का रेखाचित्र अत्यंत शानदार है। ऐसी पत्रिका के प्रकाशन के लिए आपको धन्यवाद।

एच. प्रेमराज बेमबोली, लुधियाना

'पुस्तक संस्कृति' का अप्रैल-जून 2018 अंक मिला। पत्रिका में मुझे सबसे अच्छा 'पुस्तक समीक्षा' कॉलम लगता है। आज बड़ी संख्या में पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, लेकिन सब तक पहुँचना संभव नहीं होता है। इच्छा और जिज्ञासा बनी रहती है, जो आपके इस कॉलम की सहायता से थोड़ी पूरी हो जाती है। सामग्री चयन और सज्जा में भी पुस्तक संस्कृति अव्वल है।

जवाहर चौधरी, इंदौर

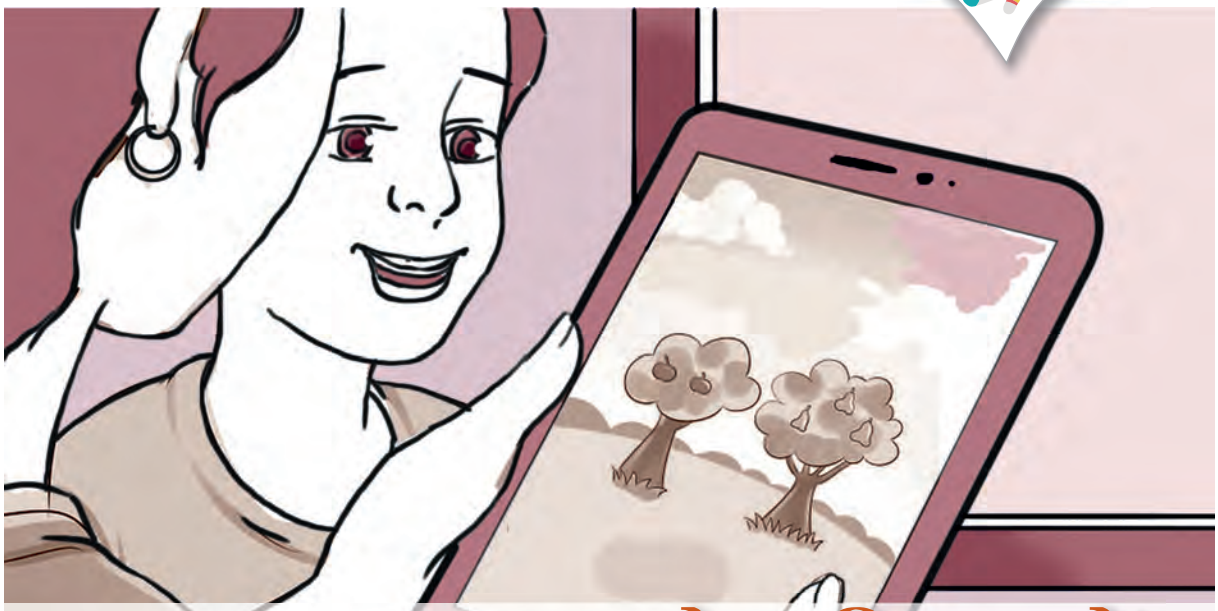
आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत् की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

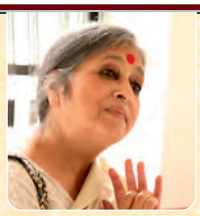
संपादक, पुस्तक संस्कृति, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

संपर्क : 267-07758/07876/07700

ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com



आज के परिदृश्य में बच्चे और लेखक



क्षमा शर्मा

जन्म : अक्तूबर, 1955

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी), पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा, साहित्य और पत्रकारिता में पीएच.डी।

प्रकाशन : दस कहानी संग्रह, चार उपन्यास और स्त्री विमर्श पर पाँच पुस्तकें, सत्रह बाल उपन्यास और चौदह बाल कहानी संग्रह प्रकाशित। टेली-फ़िल्म 'गाँव की बेटी' दूरदर्शन से प्रसारित तथा कहानी 'रास्ता छोड़ो डार्लिंग' पर दूरदर्शन द्वारा फ़िल्म बनायी गई है।

सम्मान : हिंदी अकादमी दिल्ली, बाल कल्याण संस्थान, इंडो-रूसी क्लब आदि संस्थाओं से पुरस्कृत तथा भारत सरकार के सूचना मंत्रालय से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार से पुरस्कृत।

संपर्क : kshmasharma1@gmail.com

यह विदेश में हुआ। दो साल पहले की बात है। बच्चे की नानी अपनी बेटी के घर आई हुई थीं। उनके आने से एक बात तो अच्छी यह हुई कि चार साल का बच्चा अच्छी तरह से हिंदी बोलने, समझने लगा। अब तक वह हिंदी समझ सकता था, बोल नहीं सकता था। माता-पिता जब काम पर चले जाते तो पूरे दिन नैनी के साथ रहने वाला यह बच्चा, अब अपनी नानी को भी घर में देखता। बच्चा उनके साथ खूब खेलता-कूदता। एक छुट्टी के दिन जब नानी भारत में किसी से बात करना चाहती थीं, तो उनकी बेटी ने कहा कि वह अपने मोबाइल से न करके, उसके लोकल मोबाइल से बातें करें। बच्चा अकसर अपने माता-पिता के मोबाइल्स पर अपने करतब दिखाने के चक्कर में रहता था, मगर कुछ कर नहीं पाता था। वह मोबाइल न खोल सके इसीलिए माता-पिता ने पासवर्ड डाल रखे थे। अब हुआ यह कि बच्चे की माँ अपना फोन अपनी माँ को पकड़ाकर नहाने चली गई। नानी ने मोबाइल का पासवर्ड पूछा तो बच्चे की माँ ने जोर से बताया। नानी जैसे ही बाहर लॉन में गईं, बच्चे ने मोबाइल उठाया और मोबाइल ऑन करके जो नंबर सामने आया डायल कर दिया। यानि कि एक बार सुनने से ही चार साल के इस बच्चे को पासवर्ड याद हो गया और उसने इसका भरपूर इस्तेमाल किया।

यही बच्चा जब पिछले दिनों भारत आया तो अब उसके हाथ में मोबाइल की जगह टेबलेट था। वह अच्छी तरह से टाइप कर सकता था। भारत के बड़े नेताओं को पहचानता था। नेट पर उनकी तसवीरें खोज सकता था। उनके नाम बता सकता था। अपने मनपसंद खेल, खेल सकता था, धारावाहिक देख सकता था। जो कुछ उसे देखना होता, वह यू ट्यूब से डाउनलोड करके निकालता, फिर अपने माता-पिता से पूछने जाता कि क्या वह यह देख सकता है? जब वे हाँ कहते, तो वह देखता। जो चीज उसे पसंद

आती, वह उसे कॉपी पेस्ट करके अपनी बुआ को मैसेज करता। कभी-कभी वह बहुत हिंसक वीडियो डाउनलोड कर लेता जिसे देखने से उसके माता-पिता मना करते तो वह मान भी जाता।

कहावत कहते थे न कि पूत के पाँव पालने में तो आज के पूत और पुत्री के पाँव टेबलेट, मोबाइल, इंटरनेट में दिख रहे हैं। खाते-पीते मध्यवर्ग के बच्चे रात-दिन इन्हीं से खेलते हैं। हाल ही में आई एक रिसर्च ने बताया था कि आजकल कोई आँखें मिलाकर बात नहीं करता। एक-दूसरे से बात करते वक्त आँखें अकसर मोबाइल स्क्रीन पर रहती हैं। जिन बच्चों के पास मोबाइल या टेबलेट है, कुछ हद तक उनके बारे में भी ये सच है। जबकि आँख से आँख मिलाकर बात करने वाले के बारे में कहा जाता था कि वह आत्मविश्वास से भरा है और सच बोल रहा है। जो आँखें मिलाकर बात नहीं करते थे, उनकी बात को सच भी नहीं माना जाता था। आज बात तो सामने वाले से हो रही है मगर आँखें मोबाइल स्क्रीन पर अटकी हैं।

एक तरह से तकनीक ने दुनियाभर में बच्चों के मन में अपनी जगह बना ली है। माता-पिता भी सोचते हैं कि बच्चे को व्यस्त रखने और हारे-थके जब काम से लौटें, तो उसके सवालों से बचने का यही तरीका है कि उसे मोबाइल या टेबलेट पकड़ा दिया जाए। अब इससे उसके स्वास्थ्य पर क्या असर पड़ता है? उसकी आँखें खराब होती हैं, वह माता-पिता के साथ कम समय बिता पाने के कारण भावनात्मक रूप से सबल नहीं हो पाता, इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।

“कंप्यूटर और नेट ने हम सब और खासतौर से बच्चों के लिए दुनिया के ज्ञान के दरवाजे खोले हैं, मगर यह ज्ञान किस उम्र में कितना पाना चाहिए, इसके बारे में नहीं सोचा है। हर उम्र के लिए ज्ञान की मात्रा होती है, लेकिन आज बच्चे सूचना विस्फोट के नीचे दबे हुए हैं।”

शायद यही कारण है कि बच्चों को बहुत बार मोबाइल, टेबलेट या कंप्यूटर का एडिक्शन हो जाता है। हाल ही में हरियाणा में मोबाइल न मिलने पर एक नौ साल के बच्चे ने अपने हाथ की नस काट ली थी। डाक्टरों के अनुसार, भारत में इतनी छोटी उम्र का मोबाइल एडिक्शन का यह पहला मामला था। दिल्ली में एक किशोर कंप्यूटर, फेसबुक आदि पर ऐसा उलझा कि रात-दिन वह इन्हीं में लगा रहता। उसने दोस्तों से मिलना, जुलना छोड़ दिया। माता-पिता से बातचीत करने के बजाय हमेशा झगड़ता रहता और हिंसक हो उठता। यहाँ तक कि स्कूल भी जाना बंद कर दिया। परेशान माता-पिता ने उसे अस्पताल में दाखिल कराया और लंबे समय तक उसका इलाज चला।

कंप्यूटर और नेट ने हम सब और खासतौर से बच्चों के लिए दुनिया के ज्ञान के दरवाजे खोले हैं, मगर यह ज्ञान किस उम्र में कितना पाना चाहिए, इसके बारे में नहीं सोचा है। हर उम्र के लिए ज्ञान की मात्रा होती है, लेकिन आज बच्चे सूचना विस्फोट के नीचे दबे हुए हैं। भारत में सबसे अधिक फेसबुक यूजर बच्चे ही हैं। वे बड़ी संख्या में पोर्न साइट्स भी देखते हैं। इनमें बच्चों के प्रति होने वाले तरह-तरह के यौन अपराध भी शामिल हैं। एक तरफ सूचना की अधिकता है, दूसरी तरफ ऐसी सूचनाएँ भी आ रही हैं कि बच्चों का फोकस कम हो रहा है। किसी भी बात पर दो-तीन मिनट से अधिक ध्यान केंद्रित नहीं हो पा रहा है।

हाल ही में भारत सरकर ने तीन हजार से ज्यादा पोर्न साइट्स पर प्रतिबंध लगाया है, लेकिन नेट पर तो बच्चों से ही जुड़ी चालीस लाख से अधिक पोर्न साइट्स हैं। इनमें से बहुतों में बच्चों के साथ होने वाले दुष्कर्म, तमाम किस्म के यौन अपराध, बाल वेश्यावृत्ति को खूब दिखाया जाता है।

कॉरपोरेट तकनीक, पश्चिम और हमारे यहाँ के कुछ अमानवीय मूल्यों ने भी बच्चों के जीवन मंत्र को मात्र मनी, मोबाइल और मॉल्स तक ही सीमित कर दिया है। बच्चे को बहलाना है, उसे पैसे दे दो, उसके सवालों से दो-चार नहीं होना है तो उसे मोबाइल या टेबलेट पकड़ा दो और घुमाने ले जाना हो तो मॉल्स में ले जाओ।

यही कारण है कि बच्चे आज तमाम तरह के रिश्तों से ही नहीं, अपने आसपास की प्रकृति से भी कट गए हैं। कई साल पहले यह लेखिका दिल्ली के एक बहुत नामी स्कूल में स्टोरी टैलिंग के लिए गई थी। वे बच्चे बहुत छोटी उम्र के भी नहीं थे। इस लेखिका ने सामने लगे पेड़ की तरफ इशारा करते हुए कहा कि चलो आज की कहानी इस पेड़ पर कहते हैं। उससे दोस्ती करते हैं। इस पर रहने वाले पक्षियों के साथ दुनिया की सैर पर चलते हैं। इसके पत्तों से हिलते-मिलते हैं। तो बताओ बच्चों इस पेड़ का क्या नाम है? कई बच्चों ने हाथ खड़े किए। किसी ने कहा पीपल, किसी ने कहा नीम, लेकिन कोई भी उस पेड़ का सही नाम नहीं बता सका। वह बरगद का एक पुराना पेड़ था और अपनी ढेर सारी जटाओं के साथ लहरा रहा था। पेड़ बचाओ, पेड़ से प्यार करो, पेड़ जीवन देते हैं आदि बातों और नारों से भला क्या हो सकता है? जब तक कि बच्चे अपने आसपास के पेड़-पौधों को नहीं जानते। उनसे लगाव महसूस नहीं करते, लेकिन समस्या यह है कि शहरी बच्चे जिनके पास सवेरे से शाम तक होमवर्क या ट्यूशन, कोचिंग, जैसे बस काम ही काम हैं, वे प्रकृति के पास जाएँ भी तो कितने समय के लिए और कैसे? देख तो हम यही रहे हैं कि न बच्चों के पास टाइम है, न माता-पिता के पास और न ही अध्यापकों के पास।

इन दिनों बच्चे के जीवन का मंत्र है सफलता, सफलता और सफलता। वह किसी भी कीमत पर चाहिए और सफलता के मानक भी कुछ संस्थानों और कुछ व्यवसायों को बना दिया गया है। इनके बीच एक बारीक रेखा पैसे की होती है। जिस संस्थान में पढ़कर बड़ा

पद मिलता हो, ज्यादा पैसा मिलता हो, बस सफलता का मानक वही है। यही कारण है कि आजकल बच्चे सातवीं-आठवीं से ही कोचिंग लेने लगते हैं।

एक बार ऐसे ही एक कहानी सुनाने वाले सत्र में इस लेखिका ने किशोर बच्चों से पूछा था—कितने बच्चे लेखक बनना चाहते हैं, तो यकीन मानिए किसी एक ने भी हाथ नहीं उठाया था। अकसर ऐसे बहुत से बच्चों से मिलती हूँ। उनसे अगर यह पूछ लिया कि नई किताब कौन सी पढ़ी, तो वे आसानी से नहीं बता पाते। वैसे भी मोबाइल के समय में किताब के मुकाबले हाथ में एक से एक स्मार्ट फोन दिख सकते हैं।

बच्चों की क्यों, कहाँ, किसलिए और कहानी सुनते वक्त बार-बार पूछना कि फिर क्या हुआ, जैसी बातें मानो अतीत की बातें बन गई हैं। पहले बच्चे की परिभाषा थी कि जब तक वह अठारह साल का रहता है, बच्चा होता है, जबकि इन दिनों बताया जा रहा है कि पिछला साठ आज का उन्नीस है। यानि कि आज का उन्नीस साल का नौजवान गुजरे जमाने के साठ के बराबर है। यह आँकड़ा किसी को रोमांचक लगता हो, मगर सुनने में तो दहशत ही पैदा करता है। आखिर उन्नीस साल के नौजवान को साठ साल का क्यों होना चाहिए। इतनी जल्दी दौड़कर वह क्या करेगा? कहीं मोमबत्ती को दोनों ओर से जलाए जाने की गति को तो प्राप्त नहीं होगा और ऐसे में हम जैसे लेखकों का भविष्य क्या होगा।

इंफोटेनमेंट के इस युग में बच्चे ज्ञान के लिए माता-पिता या अध्यापकों पर निर्भर नहीं रहे। गूगल और उस जैसे ही तमाम सर्च इंजन और साइट्स उसके लिए खुली हैं, बल्कि हाल तो यह है कि माता-पिता बच्चों से पूछ रहे हैं कि अरे मुन्ना जरा बताना तो यह नंबर कैसे सेव करूँ। यह फाइल कैसे खोलूँ। ऑनलाइन बिल पेमेंट कैसे करूँ। यह बड़ों के मुकाबले बच्चों के गुरु बनने का जमाना है। तकनीक के इस अति प्रयोग ने बच्चों को घर घुस्सू भी बना दिया है। आउटडोर गेम्स की जगह जैसे उनके जीवन में बची ही नहीं है। बहुत से स्कूलों में भी न तो पहले की तरह खेलने के लिए लंबे-चौड़े मैदान हैं, न ही बच्चों के पास खेलने का समय। बच्चे और खेल एक-दूसरे के पूरक माने जाते रहे हैं। आज बच्चे अगर खेल नहीं पा रहे हैं तो कोर्स की किताबों के अलावा उनके पास दूसरी किताबों और पत्रिकाओं को पढ़ने का समय कितना बचा है, यह सोचने की बात है। अगर बच्चों से पूछो तो उनमें से बहुत कम बच्चे ऐसे मिलते हैं जो कोर्स की किताबों के अलावा और कुछ भी पढ़ पाते हैं।

इन बच्चों के लिए भाषा की समस्या भी है। एक भाषा ताकतवरों की, नौकरी की, इज्जत की है जिसे अंग्रेजी कहते हैं। बाकी की मातृभाषाएँ कहलाती हैं जो हमेशा अंग्रेजी के आगे दुम हिला देने वाली बना दी गई हैं। बच्चों को बता दिया गया है कि जिस भाषा में तुम रोजमर्रा के काम करते हो, बोलते-चालते हो, वह तुम्हें आगे नहीं ले जा सकती, क्योंकि अपने यहाँ मातृभाषा पढ़कर कोई रोजगार नहीं पाता, इसलिए मातृभाषाओं का साहित्य भी अकसर हाशिए पर दिखाई देता है।

इस संदर्भ में एक घटना याद आती है। कई साल पहले एक मित्र ने अपने बच्चे का जन्मदिन मनाया था। उन्होंने रिटर्न गिफ्ट के रूप में बच्चों के लिए किताबें खरीदीं। इनमें हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं की किताबें थीं। पहले तो गिफ्ट के रूप में किताब बच्चों को पसंद नहीं आई। फिर जिस बच्चे को अंग्रेजी के मुकाबले हिंदी की किताब मिली थी, उसे यह कतई अच्छा नहीं लगा। उसे लगा कि वह उन बच्चों से हीन है, जिन्हें अंग्रेजी की किताबें मिलीं। मातृभाषा की स्थिति आप इस छोटी-सी घटना से ही समझ सकते हैं। किताब से यह दूरी क्योंकर है, अपनी भाषा के प्रति ऊँच-नीच की भावना और हेय दृष्टि बच्चों के दिल में किसने डाली।

आज के बच्चे को यदि प्रेमचंद की दो बैलों की जोड़ी कथा पढ़ाई जाए तो शायद बच्चे बता ही न सकें कि हल क्या होता है, बैल क्या होते हैं। उन्हें कैसे चलाया जाता है। गोधूलि क्या होती हैं? पशुओं के लौटने की आवाजें और उनके गले में बँधी घंटियाँ कैसा समाँ बाँधती हैं।

बच्चे का ऑब्जर्वेशन और मेहनत ही उसे श्रम करना और श्रम के प्रति सम्मान का नजरिया रखना सिखाती थी। मगर आज तो देखने में आता है कि बच्चों को होमवर्क के लिए जो प्रोजेक्ट्स दिए जाते हैं, वे उन्हें खुद नहीं बनाते। जगह-जगह ऐसी दुकानें खुली हुई हैं जो मोटी रकम लेकर इन प्रोजेक्ट्स को बनाकर देती हैं। अब सोचिए कि बच्चे तो बच्चे इस फरेब में उनके माता-पिता भी शामिल रहते हैं, तो कैसे आप किसी रचना, कहानी, कविता के माध्यम से बच्चे को सच्चाई का पाठ पढ़ाएँगे। एक तरफ घर में, स्कूल में कहा जाता है कि सदा सच बोलो। दूसरी तरफ यही बच्चे पल-पल पर मामूली बातों के लिए अपने बड़ों को झूठ बोलते देखते हैं।

एक लेखक के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती इसी बच्चे के लिए लिखने की है। वह बच्चा जिसके सामने पूरी दुनिया के दरवाजे सिर्फ एक क्लिक की दूरी पर हैं। तो आखिर ऐसा क्या जो इसके लिए नया हो, जो इसे न पता हो, प्रकारांतर से आप अपनी रचनाओं के जरिए इसे एक अच्छा नगरिक बनने का संदेश दे सकें। यह अपना जीवन ऐसा जिए कि जिससे इसका, परिवार का, समाज का और देश का भला हो सके। यह एक अच्छा नागरिक हो। भाईचारे और प्रेम की बातें ही न करे, वैसा जीवन में करके भी दिखाए, इसलिए ये ऐसी रचनाएँ पढ़े जो मनोरंजक तो हों ही, उनमें कोई संदेश भी निहित हो।

यों आज भी तकनीक सैवी हो जाने के बावजूद अगर बच्चे को कोई किताब या पत्रिका देनी हो, तो पहले माता-पिता उसे पढ़ते हैं। इसलिए बच्चों की पत्रिकाएँ अकसर इस बात का ध्यान रखती हैं कि जो वे छाप रही हैं, उसे बच्चों से पहले माता-पिता को पसंद आना

चाहिए। यह एक तरह का विरोधाभास भी है। एक ओर बच्चे के हाथ में टेबलेट और मोबाइल पकड़ाकर आपने उसे दुनिया का नागरिक बना दिया है, लेकिन किताबों और पत्रिकाओं को चुनने के लिए आज भी वह अपने माता-पिता पर निर्भर है।

पिछले दिनों तमाम किस्म की मायथोलॉजी पर बने धारावाहिक जैसे कि छोटा भीम, बाल गणेश, बाल हनुमान, काली, शिव आदि सिर्फ हमारे देश में ही नहीं विदेशों में भी बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

यह लेखिका कई बार सोचती है कि आखिर इन धारावाहिकों में ऐसा क्या है जो बच्चों को इतना पसंद आता है, तो लगता है कि शायद कहानी की त्वरा, कहानियों में बुनी तमाम किस्म की फैंटेसी बच्चों को ज्यादा पसंद आती है। हैरी पॉटर की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उसमें निहित यही फैंटेसी का तत्त्व है। फैंटेसी बच्चे को उसके वर्तमान और उसमें छिपी हुई परेशानियों से दूर ले जाती है। वैसे भी बच्चे बहुत चमत्कार प्रिय होते हैं। जो कहानियाँ उन्हें चकित करती हैं, ऐसा कैसे हो सकता है या ऐसा भी होता है के सवाल जवाब सिखाती हैं, वे ही उन्हें अधिक पसंद होती हैं। यह इस लेखिका का निजी अनुभव भी है।

अब तक कहा जाता रहा है कि बच्चे माया-मोह से परे होते हैं, लेकिन आजकल बच्चे की बात-बात पर जिद करना अच्छी बात है, विज्ञापनों के द्वारा यह बताया-सिखाया जा रहा है। उसे शैशव से ही एरोगेंस और एटीट्यूड के बारे में बताया जा रहा है। ब्रांड नाम के भगवान के बारे में उसे शिक्षित किया जा रहा है। उसे स्टेटस कॉन्श्यस बनाया जा रहा है। गरीब और अमीर बच्चे का इतना निर्लज्ज भेद और अमीरी के रुतबे का इतना आदर्शीकरण इससे पहले समाज में शायद कभी नहीं देखा गया और इस पुण्य कार्य में हमारा पूरा मीडिया, प्रचार के तमाम माध्यम शामिल हैं, क्योंकि इन माध्यमों में गरीब और साधनहीन की कोई जगह नहीं। गरीब न अच्छा खरीददार हो सकता है, न ही अच्छा उपभोक्ता ही। वह चमक-दमक में धब्बे की तरह जो ठहरा। इसलिए बच्चों को बचपन से ही यही सिखाया जाए कि अगर इस धरती पर रहना है, सत्ता और रुतबा हासिल करना है, तो अमीर बनो और अफसोस सबसे ज्यादा इन दिनों यह बात माता-पिता भी सिखाते हैं।

आज के बच्चे को देखकर लगता है कि जिज्ञासा का वह भाव आखिर कहाँ गया? जब बाल कृष्ण अपनी माता से पूछते होंगे कि 'मइया कबहिं बढ़ेगी चोटी'। आज तो बच्चे से पूछा जाता है कि बोल कैसे बाल चाहिए? मशरूम कट या शाहरुख कट।

आज लेखक के सामने इस नए बच्चे के लिए लिखने की चुनौती तो है ही, उसका ध्यान खींचने और छपने की भी है। परिदृश्य में गिनती की बाल पत्रिकाएँ हैं। जिनके पाठकों की संख्या लगातार कम हो रही है। इसके अलावा अखबारों में बच्चों के लिए बहुत कम जगह बची है और विज्युअल मीडिया टी.वी. आदि की तो पूछिए ही मत। वहाँ तो अकसर बच्चे तब खबर बनते हैं जब उनके साथ कोई हादसा हो जाता है।

मुझ जैसे लेखक बहुत दुविधा ग्रस्त हैं। आत्ममुग्धता का जमाना जा चुका है। ऐसा क्या लिखें कि बाल पाठकों को पसंद आए। कौन सी ऐसी कविता, कहानी, बाल उपन्यास हो जो आज के इस टैक सैवी बच्चे को खींचकर अपनी तरफ ले आए। कैसे बच्चे को अंग्रेजी के व्यामोह से निकालकर मातृभाषाओं की तरफ लौटाया जाए? अपनी रचनाओं के जरिए बच्चों को यह बताया जाए कि दुनिया के अधिकांश देश अपनी मातृभाषाओं में काम करते हैं, उन्हीं को अपनाते हैं और वे खूब तरक्की भी करते हैं, क्योंकि नई रिसर्च ने बताया है कि बच्चे जन्म से पहले ही अपनी मातृभाषा को जानने-समझने लगते हैं। आखिर अभिमन्यु की कथा यही तो कहती है।

अरसे से बच्चों के लिए लिखने वालों, उनकी पत्रिकाएँ निकालने वालों, यहाँ तक कि स्टोरी टैलिंग करने वालों को विद्वान लोग बताते रहे हैं कि बच्चे को कहानी सुनाओ मत, दिखाओ। दिखाओ! मतलब किसी कहानी में टैक्स्ट, कंटेंट या कथानक कम से कम हो, चित्र अधिक हों, बड़े-बड़े हों और बहुरंगी हों। कहा जाता रहा है कि बच्चे पढ़ने के मुकाबले चित्र अधिक देखते हैं और उनसे सीखते हैं। अब वे ही लोग कह रहे हैं कि अधिक चित्र दिखाने से बच्चों की कल्पना शक्ति का क्षय होता है और चीजों के बारे में नया कुछ सोचने, कल्पित करने के मुकाबले पहले से बना बनाया सोच पर हावी हो जाता है। मैं भी सोचती हूँ कि जब पुराने जमाने में पिता जी ने एक बार एक घुड़सवार और उसकी राक्षस से लड़ाई की कहानी सुनाई थी तो उन्होंने यह नहीं बताया था कि राक्षस कैसा होता था। वह कैसा दिखता था। कैसे चलता था, क्या खाता था। तब मन के घोड़े दौड़ने लगे थे कि आखिर राक्षस कैसा होता होगा। क्या पहनता होगा, क्या खाता होगा, कहाँ रहता होगा, बच्चों को क्यों डराता होगा, बच्चों को उससे क्यों डरना चाहिए। सच तो यह है कि बच्चों की कल्पना के ये राक्षस, परियाँ, जादूगर, जानवर उन्हीं जैसी मासूमियत से भरे होते थे।

तीस-पैंतीस साल पहले मशहूर पत्रकार अलका सक्सेना ने एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा था कि बच्चों के लिए जब मिट्टी के खिलौने बनाए जाते थे, तब मिट्टी से बनने वाले हिंसक पशु जैसे शेर, चीतों के चेहरे भी हिंसा नहीं मासूमियत से भरे होते थे, भोले होते थे। सच बात है, तब बच्चे को एटीट्यूड और एरोगेंस के मुकाबले विनम्रता और अपनी गलती मानने की शिक्षा दी जाती थी। माता-पिता भी शिकायत मिलने पर किसी और की तरफ उंगली उठाने के मुकाबले अपने ही बच्चे को समझाते और डाँटते थे। आज की तरह नहीं था कि बच्चे को समय से पहले ही बड़ा बना दिया गया है।

अनूठे बाल साहित्यकार और कुशल वाचक : अमृतलाल नागर





डॉ. नागेश पांडेय 'संजय'

जन्म : 2/7/1974, खुटार, शाहजहाँपुर (उ.प्र.)

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी, संस्कृत), एम.कॉम., एम.एड., पीएच.डी.

संप्रति : वरिष्ठ प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, शिक्षक शिक्षा विभाग, राजेंद्र प्रसाद पी.जी. कॉलेज, मीरगंज, बरेली (उ.प्र)

प्रकाशन : 'बाल साहित्य के प्रतिमान', 'बाल साहित्य : सृजन और समीक्षा' तथा 'बाल साहित्य का शंखनाद', 'टेढ़ा पुल', नेहा ने माफी माँगी, आधुनिक बाल कहानियाँ, अमरूद खट्टे हैं, मोती झरे टप-टप, अपमान का बदला, भाग गए चूहे, दीदी का निर्णय, मुझे कुछ नहीं चाहिए, यस सर, नो सर, छोटे मास्टरजी आदि।

सम्मान : उ.प्र. हिंदी संस्थान, चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट आदि संस्थाओं से पुरस्कार-सम्मान प्राप्त।

संपर्क : 9451645033

बाल साहित्य का विकास मौखिक परंपरा से हुआ है। कभी खेल-खेल में बच्चों ने इसे गढ़ा तो कभी बच्चों की जिद या मनोरंजन की भूख के चलते बड़ों ने इसकी रचना की। एक था राजा और एक रानी ...और कहानी बढ़ निकलती। जंगल में था एक शेर और एक सियार। हाँ, तो फिर क्या हुआ ...और बस, कहानी बढ़ चलती। बाल साहित्य की विकास यात्रा ऐसे ही वाचिक स्तर पर परिवर्द्धित-संवर्धित हुई है। मुद्रण की संभावनाएँ बनीं तो बाल साहित्य की आवश्यकता शिक्षा की दृष्टि से अनुभव की गई और सिलसिला चलता रहा। फिर बाल साहित्य पर अनुभव की छाप के साथ-साथ प्रयोगों की थाप भी दिखाई देने लगी।

बाल साहित्य की धज बदल गई। केवल मनोरंजन या शिक्षा ही नहीं, बल्कि प्रगति की इच्छा और सपने सँजोए देश को रूढ़ियों से मुक्त करने और इसके लिए भावी पीढ़ी को एक नई सोच से संपृक्त करने की कवायद से युक्त सृजन को गति मिली। गंभीर लेखकों ने इस दिशा में भरपूर रुचि ही नहीं अपितु अपनी क्षमता भी प्रदर्शित की। प्रेमचंद, दिनकर, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, निराला, महादेवी वर्मा, नागार्जुन, विष्णु प्रभाकर सरीखे धुरंधर लेखकों ने उत्तम बाल साहित्य की सर्जना में भी अपनी उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह किया। कम या ज्यादा की बात नहीं लेकिन इन्होंने जो लिखा, वह बहुत ऊँचे पाए का लिखा।

आजादी के पहले के इस दौर के इन्हीं लेखकों में एक महनीय नाम ऐसा है जिनकी क्षमताएँ कुछ अलग थीं। जी हाँ, जिनका सृजन कुछ अलग था। जिनका अंदाजे बयाँ अलग था। वे लेखक भी थे और वाचक भी। सरल शब्दों में कहें तो वे गजब के किस्सागो थे। अपने और अपनों के बच्चे उन्हें घेरे रहते और वे कहानी पर कहानी गढ़ते जाते। कहानी क्या गढ़ते जाते, वे तो जैसे जादुई

तस्वीरें मढ़ते जाते। जिन्हें जैसे किस्सागोई के बाइस्कोप से देखते हुए बच्चे चहकते, उमगते, उछलते और मचलते। मचलते कि और सुनाओ। और इस और के चक्कर में कितना अधिक लिख गए माननीय अमृतलाल नागर कि जिसका शायद उन्हें भी भान न रहा होगा। इसीलिए तो एक लंबे समय के बाद जब उन्होंने अपने बाल साहित्य की ओर परिमाणात्मक दृष्टि फेरी तो वे खुद चमत्कृत थे और कहीं न कहीं क्षुब्ध भी। क्षुब्ध इसलिए कि वे उसे बचा न सके। किस्सागोई के बहाने सुनाया गया कितना बाल साहित्य किस्सा बनकर रह गया। स्वयं अमृतलाल नागर के शब्द देखिए। वे कहते हैं कि "उन्होंने जितना बाल साहित्य गढ़ा है उसका दसमांश भी बमुश्किल लिपिबद्ध कर सके"। (उत्तर प्रदेश, मासिक, नवम्बर 2003 पृ. 25)

यही बात उनके सुपुत्र डॉ. शरद नागर भी दोहराते हैं कि यदि नागर जी द्वारा बच्चों को अनौपचारिक रूप से सुनाई गई सभी कहानियाँ लिपिबद्ध की गई होतीं तो उनके बाल साहित्य समग्र के भी डिमाई आकार के पाँच-पाँच सौ पृष्ठ के 3-4 खंड अवश्य ही होते। (उत्तर प्रदेश, नवंबर 2003, पृ. 25)

निसंदेह सोचकर अचरज होता है कि एक लंबे समय तक श्रेष्ठ बाल साहित्य की अभावगाथा का रुदन करने वाले विद्वानों का ध्यान नागर जी की ओर क्यों न गया? क्या अच्छा होता कि बाल साहित्य को लेकर किए गए उनके प्रयोगधर्मी कार्य के महत्त्व को अनुभव किया गया होता। उस महत्त्व को सम्मान मिलता। फिर भी, नागर जी का जो बाल साहित्य उपलब्ध है, वह न कम है न कमतर। बाल कहानी, बाल उपन्यास, बाल कविता, पद्यकथा, जीवनी और रेडियो बालनाटक विधाओं में उनका प्रभूत सृजन है जिसे देख-पढ़कर उनके प्रति अपार श्रद्धा के भाव उमगते हैं।

मस्तराम कपूर उर्मिल ने मधुमती के बाल साहित्य विवेचन विशेषांक, जुलाई-अगस्त 1967, में तत्कालीन डेढ़ दशकों के बाल साहित्य का विवेचन प्रस्तुत करते हुए अमृतलाल नागर के नटखट चाची नामक बाल कहानी संकलन का उल्लेख किया है।



दरअसल साहित्य के अनन्यसेवी दुलारेलाल भार्गव ने गंगा ग्रंथागार से बाल विनोद पत्रिका निकाली थी। 1938 के आसपास नागर जी की अनेक बाल कहानियाँ वहाँ प्रकाशित हुईं जो बाद में गंगा पुस्तकमाला सीरीज के अंतर्गत नटखट चाची पुस्तक के रूप में 1945 में प्रकाशित हुईं। इस संग्रह की कहानियों को पढ़ते हुए एक बात साफतौर पर उभरती है कि नागर जी के मन में एक बालक का निवास आजन्म रहा। वे बालमन के कुशल चितेरे थे। बालमन को आह्लादित करने के साथ-साथ उसे दिशा देने की दिशा में वे सदैव तत्पर रहे। उन्होंने बच्चों के लिए यथार्थ लेखन किया। बच्चों को सदैव नायकत्व प्रदान किया। बच्चे मन के राजा तो होते ही हैं, नागर जी ने उनके मन में यह बात घर करने में कसर न छोड़ी कि हाँ, तुम राजा हो। कुछ भी कर सकने की प्रतिभा तुम्हारे भीतर है। यही कारण है कि नागर जी के कथानायक बच्चे किसी परी के आगे लालायित भाव से खड़े नहीं दिखते बल्कि वक्त जरूरत वे परी की भी सहायता करते देखे जाते हैं। यही बाल साहित्य का प्रगतिशील पक्ष है जिसकी धमक उनके साहित्य में उस जमाने में देखी जा सकती है। जी हाँ, उस जमाने में जब परतंत्रता की बेड़ियों ने कहीं न कहीं हमारे मन और हमारी सोच को भी कैद कर रखा था। यह कम बड़ी बात नहीं है कि नागर जी उस जमाने में कितने बड़े स्वप्नों के दृष्टा और सृष्टा थे। जी हाँ, बच्चों में लीक से हटकर कुछ नए सपनों को जगाने के सृष्टा। कदाचित् इसीलिए वे बालमित्र थे। बालमंडली के अभिन्न और अनन्य। बच्चों में भय या कातरता उन्हें कतई बर्दाश्त न थी। डायन और जादूगर तो उनके यहाँ पानी भरते देखे जा सकते हैं। इन पर विज्ञान की विजय उनकी इसी नई सोच का परिचायक थी। वे फैंटेसी में माहिर थे।

रमेश तैलंग ने ठीक ही लिखा है कि फैंटेसी के साथ हास्य और रोमांच को मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करने की कला में सिद्धहस्त पुरानी पीढ़ी के कुछ दिग्गज बाल उपन्यासकारों की बात की जाए तो हिंदी के मूर्धन्य कथाकार अमृतलाल नागर का नाम सबसे पहले जबान पर आता है। नागर जी ने बच्चों के लिए विनोदपूर्ण शैली में जैसी एक से एक अनूठी कहानियाँ लिखी हैं, वैसे ही अनूठे बाल उपन्यास भी लिखे हैं। बजरंगी नौरंगी, बजरंगी पहलवान, बजरंगी स्मगलरों के फंदे में ...ये तीन ऐसे बाल उपन्यास हैं जिनमें किस्सागोई का मौलिक अंदाज तो है ही, देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों जैसा तिलिस्मी रहस्य-रोमांच और पेट में बल पैदा करने वाला हास्य-विनोद भी मौजूद है।

अक्ल बड़ी या भैंस कुछ अलग ढंग का बाल उपन्यास है जिसमें एक जमींदार के अड़ियल और घमंडी बेटे की अक्ल किस तरह ठिकाने लगती है, इसकी मनोरंजक कथा है। (हिंदी बाल साहित्य विधा विवेचन, संपादक डॉ. शकुंतला कालरा, पृ. 451)

अमृतलाल नागर की कहानियाँ सहज कौतूहल से रची पगी हैं। नटखट चाची पुस्तक में संकलित हास्य कहानी 'लिटिल रेड इजिप्शिया की गाथा' कुछ अनोखी है। संस्मरणात्मक शैली की इस कहानी के शीर्षक के प्रति पाठकीय उत्सुकता बराबर बनी रहती है। रोचक घटनाक्रमों के साथ जब लेखक के साथी का पाला हेडमास्टर साहब से पड़ता है तो रहस्य के पर्दे उठते हैं और पाठक अपनी हँसी नहीं रोक पाता।

इजिप्शिया जी ने बताया—मेरा नाम छोटे लाल मिश्रा है जनाब।

हेडमास्टर ने पूछा और इसका अंग्रेजी तजुर्मा क्या है?

'लिटिल रेड इजिप्शिया' जनाब।

नागर जी, जैसा कि पहले कहा गया कि गजब के किस्सागो थे। उनकी कहानियाँ प्रायः संबोधन शैली में होती थीं। 'सुअर की कहानी' एक तरह से किशोर होते बच्चे के मन की ऐसी व्यथा है जिससे अधिकांश बच्चे दो-चार होते हैं। देखिए—

बच्चों! कहानी कहने से पहले मैं तुम्हें यह बतला देना चाहता हूँ कि मैं सुअर नहीं हूँ। यद्यपि बचपन में अकसर बहुत-सी मामूली गलतियों पर पिताजी तथा स्कूल के बहुत से मास्टरों ने मुझे यह बतलाया कि मैं सुअर हूँ।

नागर जी के बाल साहित्य सृजन के स्रोत उनके परिवार और पास पड़ोस के बच्चे रहे हैं। पोते, नाती और बिटिया को आधार बनाकर लिखी गई उनकी यह कविता कितनी लोकानुरंजक झंकृत करनेवाली है—

छोटी बुआ जुलैया।
लूडो खेले/चुटकी काटे
वह है बड़ी बंदरिया।
.....
दादा जी का चश्मा पहना, संजीवन ने भाई।
औ संदीपन ने नाना जी की इक छड़ी उठाई।
फिर आँगन में धूम मचाते, गाएँ दोनो भाई—
छोटी बुआ जुलैया,
मौसी पूसी बिलैया।

(उत्तर प्रदेश, नवंबर 2003, पृ. 20)

कहते हैं कि भारत बुक कंपनी लखनऊ से 1951 में प्रकाशित उनकी पुस्तक निंदिया आ जा ढेरों बच्चों को कंठस्थ थी। ...और ऐसा इसलिए भी था कि नागर जी तो बच्चों के स्वरों को ही शब्दों में ढालते थे। बच्चा उनका मार्गदर्शक भी था और समीक्षक भी। उन्होंने इस तथ्य को स्वीकारा भी है। बच्चे उनकी रचनाएँ सुनकर जब मित्रवत यह कहते कि नहीं ऐसा तो हम पढ़ चुके हैं तो लेखन की दृष्टि से यह सबसे बड़ी चुनौती उनके सामने होती और यही चुनौती लगातार उनसे बेहतर और बेहतर ...और अधिक बेहतर सृजन कराती रही। उनका सृजन इसीलिए नई ताजगी से लबरेज है। मौलिकता की दाद देनी ही होगी। क्या और कहाँ से नई बात वे निकालकर ले आते हैं। बालमन की थाह लेने के लिए वे सदैव वाह के अधिकारी हैं। इस सफलता के नेपथ्य में छिपे रहस्य को उनके ही शब्दों में जानिए—'पिछले कुछ वर्षों में मुझे प्रायः रोज ही बच्चों को कहानियाँ सुनाने के लिए बाध्य होना पड़ा है। मेरे भतीजे, बड़ा दोहता और पोता चूँकि बच्चों की पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने की सुविधा नियमित रूप से पाते हैं, इसलिए मेरी पुरानी सुनी पढ़ी कहानियों का स्टॉक इनके लिए अपना जादू नहीं रखता—ये तो हमने पढ़ी हैं, नई सुनाइए—इस नएपन की फरमाइश पूरी करने के लिए मैं कुछ प्रयोग करना चाह रहा हूँ।' (बाल साहित्य रचना और समीक्षा, संपादक डा. देवसरे, पृ. 19)

> **"हमारे बच्चों को जो ताजगी मिलनी चाहिए, वह उन्हें सुनियोजित ढंग से अब तक नहीं मिल पा रही। बच्चों में सैर की प्रवृत्ति, नए नए देशों और रहस्यमय पहाड़ों, नदियों के वास्तविक भूगोल के साथ काल्पनिक नायकों की कथाएँ जोड़कर मजे में जगाई जा सकती है। बहुत से ऐसे काम किए जा सकते हैं।**

उक्त ग्रंथ का पहला ही आलेख 'बाल साहित्य सुनियोजित लेखन की आवश्यकता' अमृतलाल नागर जी द्वारा लिखित था। विश्व बालवर्ष 1979 के अवसर पर प्रकाशित इस ग्रंथ में बाल साहित्य सुनियोजित लेखन की आवश्यकता आलेख में उनके विचार-दीप आज भी बाल साहित्य के सृजन पथ को आलोकित करते जगमगा रहे हैं। उन्होंने लिखा है कि सब मिलाकर अर्थ यह निकलता है कि हमारे बच्चों को जो ताजगी मिलनी चाहिए, वह उन्हें सुनियोजित ढंग से अब तक नहीं मिल पा रही। बच्चों में सैर की प्रवृत्ति, नए-नए देशों और रहस्यमय पहाड़ों, नदियों के वास्तविक भूगोल के साथ काल्पनिक नायकों की कथाएँ जोड़कर मजे में जगाई जा सकती है। बहुत से ऐसे काम किए जा सकते हैं।

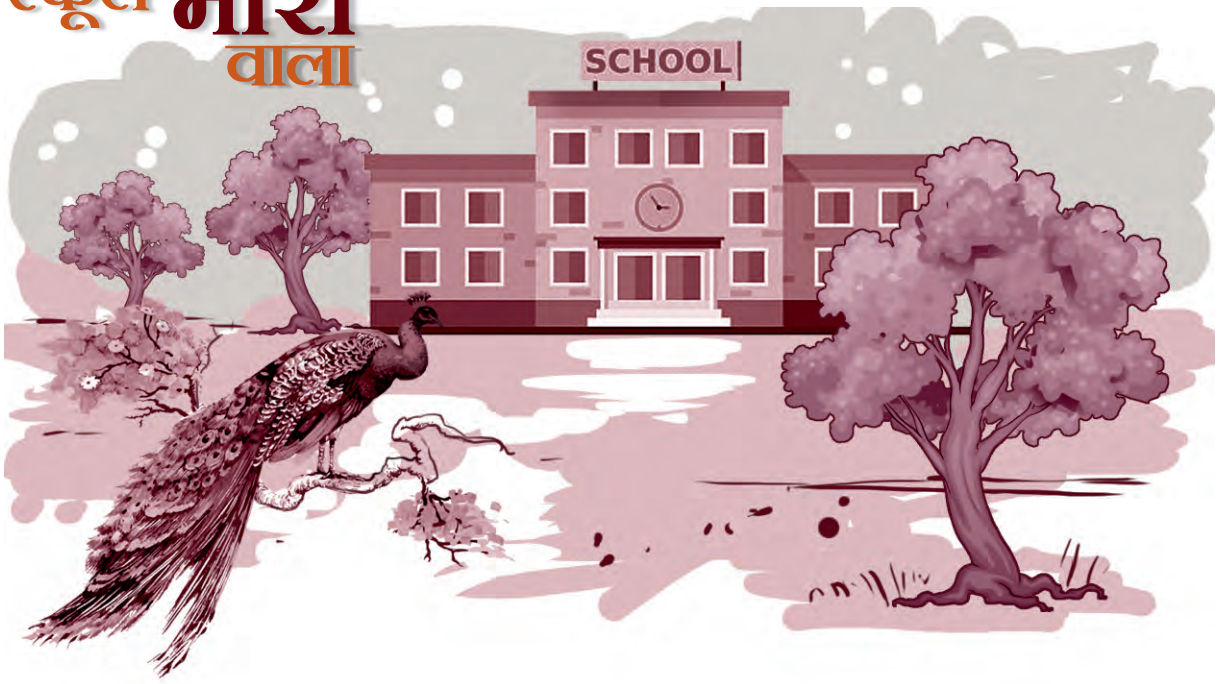
ये काम कौन से हो सकते हैं? इन पर चिंतन की आवश्यकता है।

अनूठे बाल साहित्य के लेखक और वाचक अमृतलाल नागर के आह्वान पर विमर्श की आवश्यकता है।

बाल साहित्य लेखन की चुनौतियों को समझने की आवश्यकता है। बालकों से जुड़कर, बाल साहित्य लेखन की आवश्यकता है।

यदि हम ऐसा कर सके तो यह बाल साहित्य, इस अग्रदूत के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

एक स्कूल मोरों वाला





प्रकाश मनु

जन्म : 12 मई, 1950, शिकोहाबाद, उत्तरप्रदेश

संप्रति : बाल साहित्य की सौ से अधिक पुस्तकें। हिंदी में बाल साहित्य का पहला व्यवस्थित इतिहास 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' लिखा। इसके अलावा संस्मरण, साक्षात्कार, आलोचना और साहित्येतिहास से संबंधित विचारात्तेजक लेखन। कई कन्नड़ समेत अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

पुरस्कार : बाल उपन्यास 'एक था ठुनठुनिया' पर साहित्य अकादेमी का पहला बाल साहित्य पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के 'बाल साहित्य भारती पुरस्कार' और हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित। कविता-संग्रह 'छूटता हुआ घर' पर प्रथम गिरिजाकुमार माथुर स्मृति पुरस्कार।

संपर्क : 09810602327

ई-मेल : prakashmanu01@gmail.com

तान्या कंधे पर बस्ता टाँगे मम्मी के साथ स्कूल जा रही थी। अभी वे स्कूल के पिछवाड़े वाली दीवार के पास ही पहुँचे थे कि एकाएक मोर की प्रसन्न आवाज सुनाई दी, 'केऊँ-केऊँ!' और उसके बाद तो बार-बार हवा को गुँजाने लगी यह टेर, 'केऊँ-केऊँ... केऊँ-केऊँ...केऊँ-केऊँ....केऊँ...!!'

तान्या अचानक चौंकी। बोली, "मम्मी-मम्मी, मोर...!" फिर जैसे अपनी बेकाबू हो चुकी उत्सुकता से उसने पूछा, "मम्मी-मम्मी, यह मोर की ही आवाज है न!"

"हाँ बेटी!" मम्मी ने मुसकराते हुए कहा।

तब तक फिर 'केऊँ-केऊँ' का मीठा-सुरीला संगीत शुरू हो गया था। अब तान्या को समझ में आ गया कि मोर एक नहीं, कई हैं।

"तो मम्मी, ये मोर हमारे स्कूल में क्यों आए हैं?" तान्या ने जानना चाहा।

"ये भी तो पढ़ेंगे, जैसे तुम पढ़ती हो।" कहते-कहते मम्मी को हँसी आ गई।

"हैं मम्मी? सच्ची!" अब तो मारे अचरज के तान्या की आँखें निकली पड़ रही थीं।

"और क्या? मोर भी तो पढ़ सकते हैं। मोर भला क्यों नहीं पढ़ सकते? वो कोई बुद्धू थोड़े ही ना होते हैं।"

मम्मी ने कहा तो तान्या के भीतर पूरी फिल्म चल पड़ी। डिस्कवरी चैनल की तरह। यह कल्पना वाकई कितनी मजेदार थी कि जिस क्लास में वह पढ़े, उसी में बगल की चेयर पर कोई मोर भी किताब खोलकर बैठा, ध्यान से मैडम का लेक्चर सुनता हुआ लैसन पढ़ रहा हो।

उसे सच्ची-मुच्ची अपने क्लासरूम में आगे की सीट पर बैठे मोर नजर आ गए। उनके पास तान्या की तरह ही स्कूल बैग था, बुक्स, कॉपियाँ, पेंसिल और कलर बॉक्स भी।

तान्या सोचने लगी, "फिर तो मैं स्कूल जाते ही सबसे पहले उन्हें हैलो किया करूँगी।"

"पर मम्मी, मैडम इन्हें मारेंगी तो नहीं?" अब तान्या को दूसरी चिंता सताने लगी।

"तान्या बेटी, भला मोरों को कोई मारता है? वे तो इतने प्यारे होते हैं। मैडम जरूर उन्हें प्यार से पढ़ाएँगी।"

"तो मम्मी, मोर पढ़ेंगे कैसे? उन्हें ए-बी-सी-डी बोलना आता है?" तान्या के सवाल खत्म होने में ही नहीं आ रहे थे।

"आता नहीं है तो क्या, सीख जाएँगे! शुरू-शुरू में तुम्हें भी तो कहाँ आती थी इंगलिश। तुम कितना परेशान होती थीं। पर फिर सीख गईं न!" मम्मी ने समझाया।

"एक दिन प्रिंसिपल सर ने प्रेयर में कहा, "यह हमारी खुशकिस्मती है कि जैसे तुम सारे के सारे बच्चों को हमारा स्कूल अच्छा लगता है, वैसे ही मोरों को भी यह स्कूल पसंद है। लगता है, मोर घूमते-घूमते निकल आए होंगे और उन्होंने हमारे स्कूल को इसलिए चुना, क्योंकि उन्हें यहाँ के बच्चे अच्छे लगे। ऐसे प्यारे बच्चे भला उन्हें कहाँ मिलेंगे? अब आप लोग कोई ऐसा काम न करें जिससे इन्हें दुःख हो।"

"वाह मम्मी, फिर तो बड़ा मजा आएगा।" कहकर तान्या तालियाँ बजाकर हँसने लगी। फिर हँसते-हँसते बोली, "मालूम है मम्मी, हमारे स्कूल में लास्ट पीरियड में सारे बच्चे मिलकर पहाड़े याद करते हैं। फिर तो मोर भी हमारे साथ-साथ पहाड़े याद करेंगे! कितना मजा आएगा ना मम्मी।"

"हाँ, मगर साथ-साथ क्यों? देखना, मैडम तो ऐसा करेंगी कि एक तरफ तुम सारे के सारे बच्चे बोलोगे और दूसरी ओर से मोर...!"

"वाह मम्मी, फिर तो कमाल हो जाएगा! हम प्रिंसिपल सर से कहेंगे, वे इसकी वीडियो फिल्म बनवा लें।" कहकर तान्या फिर से तालियाँ बजाने लगी। फिर बोली, "ऐसा हो सकता है न मम्मी...?"

"हाँ-हाँ बेटी, क्यों नहीं? जरूर हो सकता है।" मम्मी ने भरोसा दिलाया। पर तान्या को शायद अब भी पूरा-पूरा यकीन नहीं था। सोच रही थी, कहीं मम्मी मजाक तो नहीं कर रहीं?

थोड़ी देर में तान्या स्कूल पहुँची तो देखा, एक-दो नहीं, पूरे चार मोर एक पेड़ के नीचे खड़े हैं। बच्चे दूर से उन्हें देख रहे थे और खुश हो रहे थे। अभी प्रेयर का टाइम नहीं हुआ था, इसलिए कोई उन्हें टोक नहीं रहा था। पर आरती मैडम ने देखा तो पास आकर कहा, "अरे, यहाँ क्या हो रहा है। चलो सब, अपनी-अपनी क्लास में।"

आरती मैडम की बात पूरी होने से पहले ही सारे बच्चे एक साथ चीखे, "मैडम मोर...!"

"मैडम तो मोर नहीं हैं, मोर वो रहे सामने।" कहकर आरती मैडम हँसने लगीं।

तब तक रूपा मैडम, मालिनी मैडम, वंदना कौल मैडम, पीटी के देवा सर और कंप्यूटर वाले सक्सेना सर भी आ गए थे। एक साथ चार-चार मोरों को देखकर उन्हें भी बड़ी हैरानी हो रही थी।

इतने में स्कूल के पीअन राधेलाल ने पास ही थोड़ा दाना लाकर बिखेर दिया। मोरों को शायद भूख लगी थी। उन्होंने देखा तो झट वहाँ आ गए और मजे में खाने लगे।

"लगता है, अब ये रोज आएँगे!" मेघना बोली।

"मुझे भी लगता है। जरूर इन्हें हमारा स्कूल पसंद आ गया है। फिर यहाँ ऊँचे-ऊँचे पेड़ भी कितने हैं, खूब हरियाली है।" नंदिनी बोली।

"हैं? फिर तो बड़ा मजा आएगा।" तान्या खुश हो गई। सच तो यह है कि आज वह इतनी खुश थी कि खुशी उसके भीतर समा नहीं रही थी। उसे लग रहा था, असल में नहीं देख पा रही, कोई फिल्म चल रही है उसके सामने।

"अच्छा, अब सब लोग चलो अपनी-अपनी क्लास में। इतनी भीड़ देखकर मोर कहीं भाग न जाएँ!" पीटी सर ने चेताया।

"हाँ-हाँ, चलो!" बच्चों ने एक-दूसरे से कहा। पर क्लास में जाते हुए भी वे मुड़-मुड़कर मोरों को ही देख रहे थे। और जब वे क्लास में जाकर बैठे, तब भी सबके ख्यालों में बस मोर ही थे।

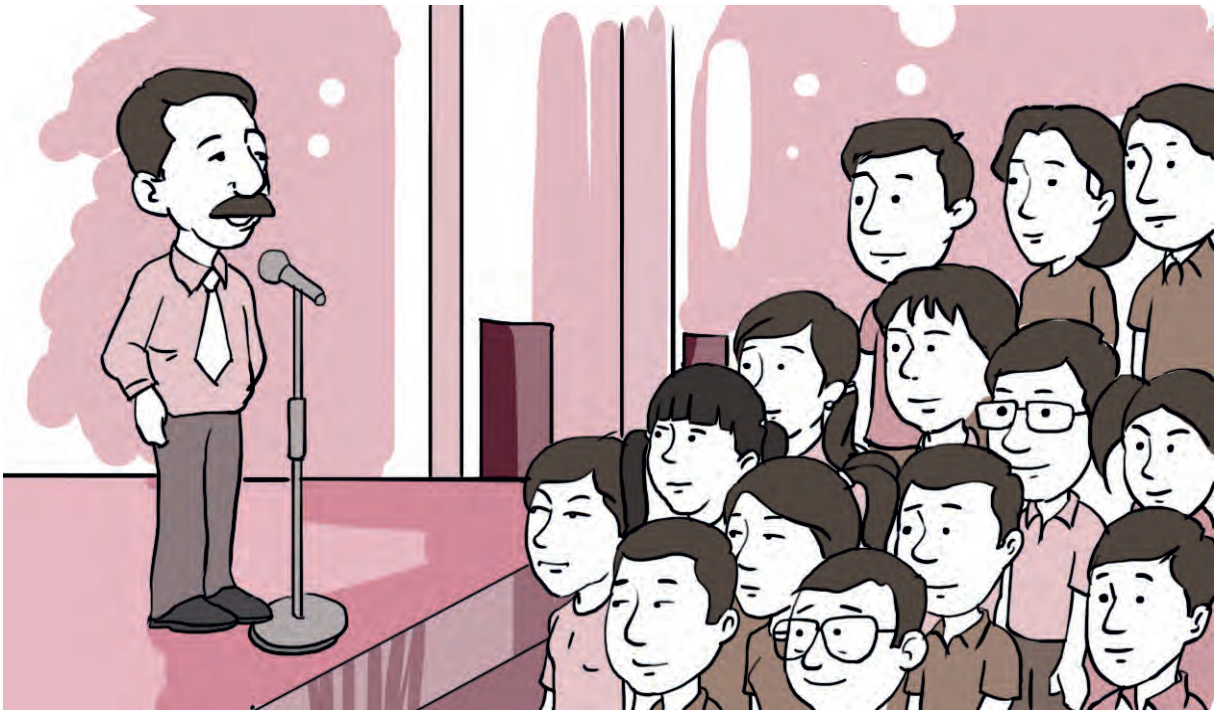
और सचमुच जो बच्चों ने सोचा था, वही हुआ। मोर जो उस दिन आए थे, रोज आने लगे। और ऐसा पिछले कोई पंद्रह-बीस दिनों से हो रहा था।

यह इतनी अजब-निराली चीज थी कि इससे देखते ही देखते पूरे स्कूल का माहौल बदल गया। बच्चे इतने उत्साहित थे कि जैसे उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा खजाना मिल गया हो।

प्रिंसिपल आनंद सर बच्चों से बहुत प्यार करते थे। जब बच्चे इतने खुश थे तो वे भला कैसे खुश न होते? उन्होंने राधेलाल से कहा, "देखो, मोरों के लिए दाना डाल दो और ध्यान रखना कोई इन्हें नुकसान न पहुँचाए।" फिर जैसे कुछ याद आया, उन्होंने कहा, "और हाँ, बच्चों से कहना, भीड़ न लगाएँ। नहीं तो हो सकता है फिर ये आना बंद कर दें।"

इधर बच्चों के उत्साह का भी ठिकाना न था। यह तो कुछ ऐसा हो गया था, जिसकी उन्होंने सपने में भी कल्पना न की थी। बच्चे घर से दाना लाकर राधेलाल को दे देते, और राधेलाल मोरों के आगे उन्हें डालता, तो वे खुशी के मारे किलकारी भरने लगते।

फिर एक दिन प्रिंसिपल सर ने प्रेयर में कहा, "यह हमारी खुशकिस्मती है कि जैसे तुम सारे के सारे बच्चों को हमारा स्कूल अच्छा लगता है, वैसे ही मोरों को भी यह स्कूल पसंद है। लगता है, मोर घूमते-घूमते निकल आए होंगे और उन्होंने हमारे स्कूल को इसलिए चुना, क्योंकि उन्हें यहाँ के बच्चे अच्छे लगे। ऐसे प्यारे बच्चे भला उन्हें कहाँ मिलेंगे? अब आप लोग कोई ऐसा काम न करें जिससे



इन्हें दुःख हो। कहीं ये ऐसा न सोचें कि हम तो यह समझकर आए थे कि यहाँ के बच्चे अच्छे हैं, पर ये तो बड़े गंदे हैं। तो बताइए आप लोग, कोई बच्चा इन्हें तंग तो नहीं करेगा ना!"

"नहीं!" सब बच्चों की एक साथ आवाज गूँजी।

अब तो हर दिन प्रेयर में प्रिंसिपल सर मोरों को लेकर कुछ न कुछ जरूर कहते। सुनकर बच्चों को अच्छा लगता। कुछ बच्चे कविता लिखकर लाते और मंच पर जाकर सुनाते। कुछ बच्चों ने चित्र भी बनाए। प्रिंसिपल सर ने एसेंबली में सब बच्चों को वे चित्र दिखाए। हर कोई उन्हें देखकर 'वाह-वाह' कह उठा।

इससे उत्साहित होकर प्रिंसिपल सर ने स्कूल में एक चित्रकला प्रतियोगिता कराई। सब बच्चों ने वहीं बैठकर मोरों के एक से एक सुंदर चित्र बनाए। कुछ बच्चों ने तो मोर और बच्चों की दोस्ती की सुंदर झाँकी ही पेश कर दी। किस्म-किस्म के चित्र, जिनमें हर बच्चे का कुछ अलग अंदाज था।

तान्या का बनाया चित्र सबको बहुत पसंद आया। उसने एक मोर को गले में बस्ता टाँगकर स्कूल जाते हुए दिखाया। पर इससे भी अच्छा चित्र एक नन्हे बच्चे कर्ण ने बनाया था। उसमें सारे मोर मिलकर एक उदास बच्चे को खुश करने की कोशिश कर रहे थे। बीच में बच्चा था और आपपास गोला बनाकर नाचते हुए ढेर सारे मोर। उसे देखते ही सब बच्चों ने तालियाँ बजानी शुरू कर दीं। उसी को पहला इनाम मिला।

वाकई स्कूल के हर बच्चे के दिल में मोरों के लिए प्यार था। सब चाहते थे, "काश! मोर रोज हमारे स्कूल में आएँ!"

शायद बच्चों के दिल की बात मोरों ने भी समझ ली। उन्हें अच्छा लगा तो उनके साथ-साथ कुछ और मोर भी आने लगे। काफी देर तक वे स्कूल में हरेभरे पेड़ों के बीच घूमते, फिर उड़कर कहीं चले जाते। अब तो आसपास के लोगों का भी इस पर ध्यान गया। वे कहने लगे, "अरे भई, यह तो मोरों वाला स्कूल है।" यहाँ तक कि धीरे-धीरे स्कूल का नाम 'मोरों वाला स्कूल' पड़ गया।

मोर अब डरते नहीं थे। प्रिंसिपल सर ने उनके लिए मैदान में एक तरफ मिट्टी का एक ऊँचा टीला बनवा दिया था। वहाँ हरी-हरी घास और खूब सारे पौधे भी लगवा दिए। मोर वहाँ आकर बैठ जाते और गर्दन ऊँची करके पुकारते, 'केऊँ-केऊँ!'

स्कूल में सभी बच्चे मोरों से बहुत प्यार करते थे। पर एक बार अनहोनी हो गई। एक शरारती बच्चे सुनील ने एक मोर को गुलेल मारी। मोर के पैर में इतने जोर से कंकड़ी लगी कि वह उसी समय जमीन पर बैठ गया। आँखों में दर्द और करुणा।

देर तक हवा में मोरों का आर्तनाद गूँजता रहा, जो उस मोर के आसपास घिर आए थे। प्रिंसिपल पास ही राउंड ले रहे थे। वे उसी समय दौड़कर आए और घायल मोर को गोद में उठा लिया। बहुत-से बच्चे भी वहाँ इकट्ठे हो गए। सबको पता चल गया कि किसी बच्चे ने मोर को गुलेल मारकर घायल कर दिया है। सबका कहना था कि उस बच्चे का पता लगाकर उसे स्कूल से निकाल दिया जाए।

जल्दी ही प्रिंसिपल सर को पता चल गया कि यह हरकत सुनील ने की है। अगले दिन एसेंबली में उन्होंने सुनील को स्टेज पर बुलाया। कहा, "देखो सुनील, मोर को बहुत चोट आई है, उसे अभी ठीक होने

में हफ्ता भर लगेगा। इस बीच उसकी देखभाल का जिम्मा तुम्हारा होगा।"

सुनील की आँखों में आँसू थे। उसे लगा, प्रेयर में जितने भी छात्र हैं, सबकी आँखों में उसके लिए गुस्सा है।

घायल मोर के चारों ओर बाकी मोर हर वक्त घेरा बनाकर खड़े रहते, जैसे वे शोकमग्न हों। सुनील घर से मोरों के लिए दाना लेकर आता। उन्हें प्यार से खिलाने की कोशिश करता, पर मोर उसकी ओर देखते भी नहीं थे। वह घायल मोर के जख्मों पर दवा लगाता, उसे बीच-बीच में थोड़ा पानी पिलाता। कुछ दिन बाद घायल मोर उड़ने लायक हुआ, तो उसके साथ-साथ सभी मोर उड़ गए।

इसके बाद चार दिनों तक वे मोर नहीं लौटे। स्कूल में जैसे सन्नाटा-सा छा गया।

सबका यही कहना था कि मोर नाराज होकर चले गए हैं और अब वे कभी नहीं लौटेंगे। पर पाँचवें दिन मोर फिर दिखाई दिए। इनमें वह मोर भी था, जिसके पैरों में गुलेल का पत्थर लगा था। वह अब ठीक था और दूसरे मोरों के साथ पेड़ों के झुरमुट में घूम रहा था।



अब सबसे ज्यादा सुनील ही मोरों के आपसास दिखाई देता, जैसे मन ही मन उनसे माफी माँग रहा हो। अगले दिन वह दाना लेकर आया और राधेलाल को देकर बोला, "अंकल, मेरे हाथ से तो ये नहीं खाएँगे, आप इन्हें दाना खिला दो।"

उसके बाद तो सुनील रोज उनके लिए दाना लेकर आने लगा। फिर एक दिन ऐसा भी आया, जब मोरों ने सुनील के हाथों से दाना लेकर खाना शुरू कर दिया। सुनील इतना खुश था कि उसका मन हो रहा था, वह खुशी के मारे नाचने लगे।

अब तो जब भी उसे समय मिलता, वह मोरों के पास जाकर खड़ा हो जाता। मोर केऊँ-केऊँ कहकर उसका स्वागत करते, तो वह प्यार से उन्हें पुचकार देता। सब लोग कहने लगे कि सुनील तो बहुत बदल गया है। एक दिन खुद प्रिंसिपल साहब ने देखा। उन्होंने पास आकर उसकी पीठ थपथपाई और चले गए। सुनील की आँखों में आँसू छलछला आए। पर वे खुशी के आँसू थे।

अगले साल प्रिंसिपल सर ने अखबारों में स्कूल का विज्ञापन निकलवाया—

"नन्हें बच्चों के लिए प्यारा मोरों वाला स्कूल!...यह नाम सुनने में कुछ अजीब लग सकता है। पर सच में हमारा स्कूल ऐसा ही है—मोरों वाला स्कूल। जो बच्चे पशु-पक्षियों से प्यार करते हैं और जिन्हें पेड़-पौधों और प्रकृति की हरियाली से प्यार है, हमारा स्कूल उन्हीं के लिए है। हमें उनका इंतजार है।"

इस पर बहुत-से नए बच्चों के मम्मी-पापा स्कूल में उनका नाम लिखाने के लिए आए। दूसरे स्कूलों के बच्चे और अध्यापक भी उत्सुकता से भरकर देखने आते थे कि भला कैसा है यह स्कूल। फिर बारिशों में मोर सप्ताह मनाया गया। उसमें नृत्य और गायन की प्रतियोगिताओं के साथ-साथ खेलकूद के भी रंग थे। शहर के सब स्कूलों के बच्चों ने इसमें हिस्सा लिया। मोरों को देखकर हर किसी का मन नाच रहा था।

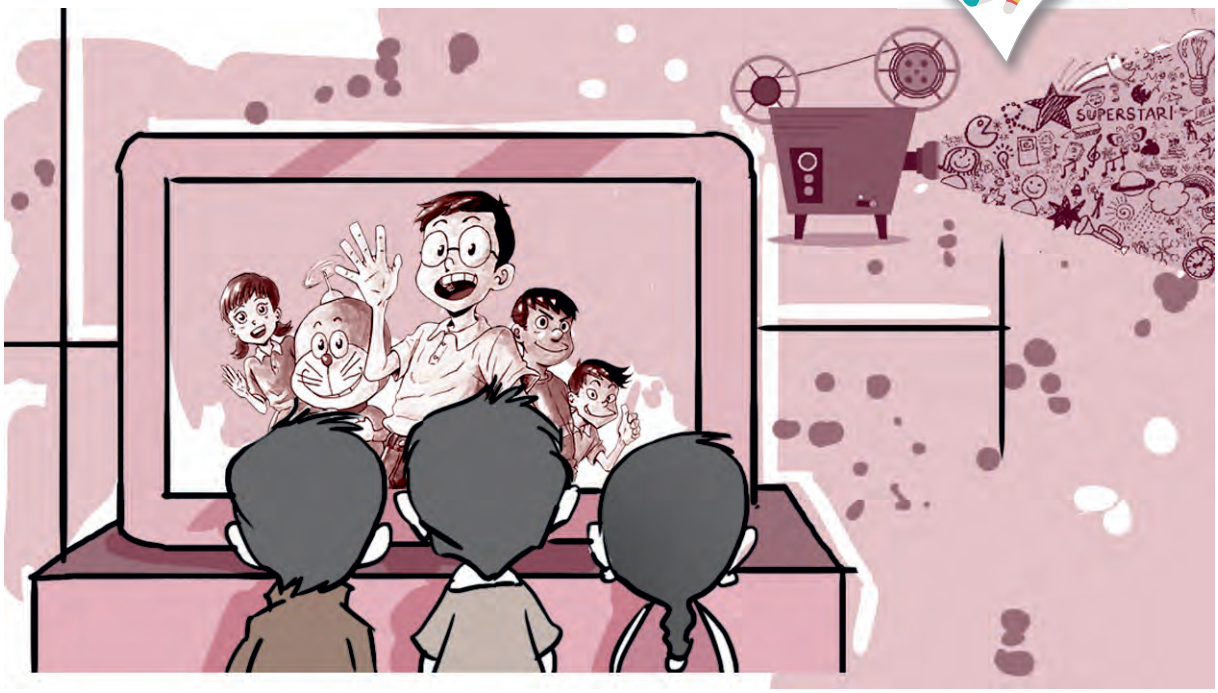
"मेरी समझ में नहीं आता, यहीं मोर क्यों आते हैं। हमारे स्कूल में क्यों नहीं आते?" एक गोलू-मटोलू बच्चे ने पूछ लिया।

इस पर पास ही खड़े प्रिंसिपल सर ने मुसकराकर कहा, "यह तो मैं भी नहीं बता सकता। पर हाँ, इतना जरूर कह सकता हूँ कि यहाँ बच्चे भोले और प्यारे हैं और मोरों को अच्छे प्यारे बच्चों से दोस्ती करना बड़ा अच्छा लगता है। फिर यहाँ पेड़-पौधे और हरियाली भी बहुत है जो सभी को पसंद है—मोरों को भी!"

तब से कई बरस बीत गए। मोर अब भी इस स्कूल में वैसे ही झूम-झूमकर नाचते हैं। अब तो मॉडर्न स्कूल को शहर में सभी 'मोरों वाला स्कूल' कहने लगे थे। पेड़ों के झुरमुट के बीच मोरों ने यहाँ अपना स्थायी डेरा बना लिया था। दिल खुश होने पर वे मस्ती से भरकर नाचते। और बारिशों में तो हर रोज ही उनका नाच स्कूल के बच्चों को रोमांचित कर देता।

इस पर नन्हीं तान्या ने भी एक कहानी लिखी है, जिसका नाम उसने रखा है, 'एक स्कूल मोरों वाला'। उसने यह कहानी प्रिंसिपल सर को दी, तो पढ़कर उनके चेहरे पर बड़ी मीठी मुसकान आ गई। उन्होंने मुसकराते हुए कहा, "तान्या, तुम्हारी यह कहानी हम सुंदर लिखाई में लिखवाकर वहाँ टाँगेंगे, जहाँ झुरमुट के बीच मोर रहते हैं, ताकि जो भी इन मोरों को देखने आए, वह तुम्हारी कहानी भी पढ़े।"

सुनकर तान्या खुश थी। इतनी खुश, इतनी खुश कि मारे खुशी के वह नाचने लगी, बिल्कुल मोरों की तरह।



बच्चे : साहित्य और कला क्षेत्र



डॉ. जसविंदर कौर बिन्द्रा

संप्रति : दिल्ली यूनीवर्सिटी के पंजाबी विभाग सहित कई कॉलेजों में अध्यापन। श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज में कार्यरत।

प्रकाशन : 50 से अधिक पुस्तकों का अनुवाद (हिंदी व पंजाबी में)। ने.बु.ट्र., साहित्य अकादेमी, भारतीय ज्ञानपीठ, वाणी प्रकाशन, प्रभात प्रकाशन, पंजाबी यूनीवर्सिटी पटियाला, यूनी स्टार आदि प्रकाशनों से पुस्तकें प्रकाशित।

पुरस्कार : पंजाबी अकादमी, दिल्ली से अनुवाद पुरस्कार से सम्मानित और रिसर्च प्रोजेक्ट के लिए फैलोशिप प्राप्त।

संपर्क : jasvinderkaurbindra@gmail.com

मनुष्य के जीवन का सबसे खूबसूरत हिस्सा बचपन को माना गया है। बेफिक्री का जो आलम बचपन में प्राप्त होता है, बाद की जिंदगी में वो भूले-भटके ही कहीं टकराता है। बच्चों का मन वैसे भी कोरे बर्तन सा होता है। यह बर्तन घर-परिवार के व्यवहार, संस्कारों के साथ स्कूल जाने पर वहाँ मिलने-जुलने वाले हमजोलियों, दोस्तों और अध्यापकों की संगति से धीरे-धीरे भरने लगता है।

आजकल जहाँ बच्चों के लिये अनेक तरीकों के नए खिलौनों और गेम्स की भरमार है। टी.वी. पर अनेक कार्टून चैनलों का बोलबाला है, वहीं साहित्य और फिल्मों का बहुत टोटा है। बाल-फिल्म समिति के निर्मित होने के बावजूद हमारे यहाँ बाल-फिल्मों की बेहद कमी है। यदि वे बनती भी हैं तो उनका उस प्रकार से प्रचार या प्रमोशन नहीं किया जाता, जैसे हिंदी फीचर फिल्मों का किया जाता है। जिस कारण उन फिल्मों की बाबत तभी मालूम होता है, जब उसे कोई बड़ा पुरस्कार आदि मिले; जैसे—'आय एम कलाम' आदि। ये फिल्में अधिकतर किसी फिल्मी मेले के लिए बनाई और दिखायी जाती हैं। पिछले कुछ वर्षों में हॉलीवुड की कुछ कार्टून फिल्में अवश्य भारी प्रमोश्नल तरीके से प्रचारित की गईं और बिना शक उन्हें अनेक बच्चों ने अपने माता-पिता के साथ देखा। पिछले दिनों में आई 'दि जंगल बुक' ने रिकॉर्ड तोड़ सफलता हासिल की।

हमारे पास अच्छे बाल-गीत भी नहीं हैं, जो लिखे और रचे जाते हैं, वे बच्चों तक नहीं पहुँच पाते। अभी भी हालत यह है कि जो बाल गीत हमारे समय में स्कूल में दाखिला लेते समय घोटा लगा कर याद किए जाते थे, वे आज भी बरकरार हैं। अर्थात् उनमें ज्यादा नई वृद्धि नहीं हुई है। आमतौर पर घरों में या शादी-विवाह में बच्चे जिन गानों पर डांस करते हैं, वे उन की उम्र और समझ से परे के

होते हैं, जबकि हम लोग 'शीला की जवानी या मुन्नी बदनाम हुई' जैसे गानों पर उन्हें नाचते देख खुद भी झूमने लगते हैं। कभी किसी ने सोचा है कि हम बच्चों को नृत्य या संगीत के नाम पर फूहड़पन दे रहे हैं। इन लचर और फूहड़ गानों पर अश्लील अदाओं से नाचते-गाते, थिरकते बच्चों से हम कहीं उनका बचपन तो नहीं छीन रहे हैं।

वैसे भी बचपन का समय दिन-ब-दिन घटने लगा है। कभी बच्चे छह या सात वर्ष की आयु में स्कूल में दाखिल किए जाते थे। फिर यह घट कर पाँच-चार तक पहुँची, परंतु अब तो दो-ढाई वर्ष के बच्चों को ही स्कूल भेजा जाने लगा है। उस पर भी सितम यह कि सभी माँ-बाप चाहते हैं कि उनका बच्चा हर विषय और गतिविधि में अव्वल रहे। हम स्वयं अपने बच्चों का बचपन छीनने के कसूरवार हैं।

मैंने कहीं पढ़ा था कि तिब्बती स्कूलों में बच्चों को प्रकृति के बारे में पढ़ाया नहीं जाता, उन्हें प्रकृति से जोड़ा जाता है। उन्हें तस्वीरों के द्वारा यह नहीं बताया जाता कि यह सूरज है या यह पहाड़ है। फूलों के रंग याद नहीं करवाए जाते, दिखाए जाते हैं। पक्षी, जानवरों के पास ले जाकर, उनसे मिलवाया जाता है। फिर उनसे पूछा जाता है कि बताओ उन्हें कैसा लगा। तब बच्चे ठीक ढंग से बोले बिना भी अपने हाव-भाव से प्राकृतिक दृश्यों और जीवों के बारे में बताते हैं। यह वर्णन, यह पेशकारी उनकी अपनी होती है, नितांत निजी। बिना कुछ रट्टा लगाए, वह अपनी आँखों देखे और अनुभव से सब कुछ सीखते व समझते हैं, जबकि हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ भी मौलिक नहीं, सब कुछ पहले से तय, रटा-रटाया और प्रमाणिकता की कसौटी पर कसा हुआ है। हम बच्चों को तयशुदा मापदंडों पर आगे बढ़ने के लिए ही अधिक प्रोत्साहित करते हैं।

किसी जमाने में बच्चों की कई पत्रिकाएँ निकलती थीं, जैसे—चंदा मामा, चंपक, नंदन (हिंदी में), पंजाबी में बाल-संदेश, पंखुड़ियाँ आदि। भले नंदन और पंखुड़ियाँ जैसी पत्रिकाएँ अभी भी निकलती हैं, परंतु उन्हें कितने बच्चे पढ़ते होंगे? अधिकतर माँ-बाप को इन पत्रिकाओं के बारे में जानकारी भी नहीं होगी। 'चंदा मामा' में जहाँ पौराणिक कथाएँ, लोक कथाएँ और किस्से-कहानियाँ होते थे, वहीं 'चंपक' मूल रूप से पशु-पक्षियों से संबंधित कहानियाँ प्रस्तुत करता था। जिसका आशय बच्चों को अपनी लोकधारा से जुड़ी विरासत के साथ जोड़ना था, वहीं पशु-पक्षियों के चरित्रों के साथ संवाद रचाकर, उनके प्रति प्रेम और स्नेह के भाव को जागृत करना था। यहाँ तक कि धर्मयुग और साप्ताहिक हिंदुस्तान जैसी बड़ी साहित्यिक पत्रिकाओं में भी बच्चों का एक पन्ना हुआ करता था।

बाद में आए कॉमिक्स बाजार ने बच्चों को 'सुपरमैन', स्पाइडरमैन' जैसे चरित्रों से जोड़ना शुरू किया। जिनमें कुछ भी साधारण व सामान्य स्तर का नहीं था। ये कथाएँ या तो जादुई



चमत्कारों की बातें करती हैं या इस दुनिया से परे किसी अन्य ग्रह या लोक की। इन कथाओं में सिवाय कल्पना के और कुछ नहीं होता है, इनका आशय बच्चों को कल्पनाशील बनाना और ऊँची उड़ान भरने के लिये प्रेरित करना है, परंतु बच्चे अधिकतर इससे मारधाड़ और ताकतवर बनकर दूसरों से छीनना अधिक सीखते हैं। प्रत्येक बच्चा सुपरमैन बनकर 'पॉवर' हासिल करना चाहता है। सुपर पॉवर और सुपरमैन का संकल्प काल्पनिक युद्ध करवाना, दुश्मनों पर विजय प्राप्त करना और किसी अन्य ग्रह पर कब्जा करने की भावना से ओत-प्रोत रहता है; जिससे ऐसी भावनाएँ बचपन से उनमें उमड़ने लगती हैं। वे बार-बार युद्ध, पॉवर, जीत और कब्जा जैसे शब्दों से दो-चार होते हैं, उनसे प्रेरित होकर कुछ करके दिखाना भी चाहने लगते हैं। आज के समय में बच्चे पराजय या हार से डरने लगे हैं। उनमें 'खिलाड़ीपन' की वो भावना कम होने लगी हैं, जिसमें हार-जीत दोनों के लिए एक

समान स्थान होना अनिवार्य होता है। हर समय जीत ही हासिल हो, यह जरूरी नहीं, हार के बाद भी जिंदगी कभी खत्म नहीं होती, यह जज्बा अब कम होने लगा है। इसी कारण किसी भी क्षेत्र में असफल होने पर बहुत से युवा अवसाद से घिरने लगे हैं या आत्महत्या की ओर अग्रसर होने लगे हैं, क्योंकि उनमें हार का सामना करने की हिम्मत नहीं रही।

अगर साहित्य की बात करें, तो हमारे आरंभिक साहित्यकारों ने बच्चों को लेकर अत्यंत उत्तम कहानियों की रचना की, विशेषकर प्रेमचंद और रविंद्रनाथ टैगोर ने। इस संदर्भ में पंजाबी कथाकार भी पीछे नहीं रहे। बाल मनोविज्ञान से संबंधित अनेक खूबसूरत कहानियाँ पंजाबी कहानी-साहित्य में अपना अहम स्थान रखती हैं। चाहे वह बच्चों की मासूमियत से भरी संत सिंह सेखों की 'पेमी दे नियाणे' हो या फिर बच्चों को केंद्र में रखकर लिखी गई सुजान सिंह की अनेक कहानियों में 'कुल्फी, बागां दा राखा या रासलीला' हों, गुरमुख सिंह मुसाफिर की 'पठान दी धी और बागी दी धी' हो। इनके साथ ही गुरबख्श सिंह प्रीतलड़ी की 'भाभी मैना', खालिद हुसैन की 'पानी की लीकें', गुरबचन सिंह भुल्लर की 'कार खिड़ौण', राम सरूप अखणी की 'अन्नी माँ दा पुत्त', प्रेम प्रकाश की 'लक्ष्मी', रतन सिंह की 'हाय औ मेरे रब्बा' और जगदीश कौशल की 'हुण मैं चौड़ नहीं करदा' विशेष रूप से उल्लेखनीय कही जा सकती हैं।

उपरोक्त कहानियाँ अपने रचना काल के बाद से आजतक बेहद चर्चित और लोकप्रिय रही हैं, इसका कारण यही है कि इन कहानियों में बच्चों की मासूमियत कायम है। आरंभिक कथाकारों की यह विशेषता भी रही कि वे बहुत सूक्ष्मता से अपने आस-पास के माहौल को ग्रहण करते रहे। इसी कारण विभिन्न कहानियों के पात्र बच्चे शरारती भी हैं, जिज्ञासु भी हैं और हिम्मत दिखाने वाले भी हैं। तभी ये बच्चे बहुत अपने से और स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। परंतु अफसोस इस बात का है कि अब कथा-कहानी में से बच्चे गायब होने लगे हैं, जैसे हमारे आस-पास फुदकती चिड़िया कम हो गई हैं।

अब वे बच्चे हमें ग्लैमर जगत और रियलिटी शोज्स में अधिक दिखने लगे हैं। विज्ञापनों में, टी.वी. सीरियलों में और सबसे अधिक टेलैंट के नाम पर, नाच-गानों से भरे प्रोग्रामों में दिखने लगे हैं। इन रियलिटी शोज्स की तो टी.वी. पर बाढ़ आई हुई है। कोई भी चैनल इन 'प्रतिभाशाली बच्चों के हुनर' से अछूता नहीं रहा है। बच्चे सच में बहुत प्रतिभाशाली नजर आते हैं, चाहे वह डांस हो, माफ कीजिएगा नृत्य नहीं या गाना गाने के हों, बच्चों में हुनर दिखाई देता है। बस व्यावसायिकता की दौड़, ग्लैमर की चकाचौंध, प्रसिद्ध होने की महत्त्वाकांक्षा, उनका बचपन छीनने और उनकी मासूमियत पर भारी पड़ने लगी है। मैं सोचती हूँ, ये छोटे-छोटे बच्चे सीरियलों में गुस्सा, नफरत दिखाते, तोड़-फोड़ करते या इनका शिकार होते हैं, भले ये आज उन सीरियलों की बेसिर-पैर की कहानियों को ना जानते-समझते हों, सिर्फ बताए गए दृश्य पर अभिनय करते हों, लेकिन वह भाव-विकार उनके भीतर अवश्य अपने रंग भरते होंगे। जिन भावों-विकारों की उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं थी, उन्हें इतनी जल्दी जानने की जरूरत भी नहीं थी, फिर भी उन्हें वे क्यों निभाने पड़ते हैं?

बाल साहित्य के महत्त्व को जानते हुए ही अनेक सरकारी साहित्यिक संस्थाओं में 'बाल साहित्य पुरस्कार' को शामिल किया गया है। प्रत्येक वर्ष यह पुरस्कार किसी न किसी बाल साहित्य के लेखक को प्रदान किया जाता है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट द्वारा बहुत वर्षों से बाल साहित्य की उच्च स्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है। इनके अलावा भारतीय ज्ञानपीठ, वाणी प्रकाशन, प्रभात प्रकाशन और राजकमल प्रकाशन जैसे बड़े प्रकाशन भी अब बड़े पैमाने पर बाल साहित्य का प्रकाशन करने लगे हैं। बाल साहित्य का बाजार भी बड़ा होने लगा है, दिल्ली या अन्य शहरों में लगते पुस्तक मेलों में आने वाले बच्चों की संख्या में भारी वृद्धि इसका प्रमाण है।

संक्षेप में, बच्चों के आगमन से नई जिंदगी, नई पीढ़ी का एहसास होता है। पति-पत्नी को माँ-बाप का दर्जा एक बच्चा ही देता है। भाई-बहन के रिश्ते भी बच्चों के कारण कायम होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का मुख्य केंद्र उसके बच्चे रहते हैं, जिनके लिए कमाया जाता है; ताकि बच्चों को सुखद व बेहतर जिंदगी दी जा सके। अड़ोस-पड़ोस से नाता भी बच्चे ही जोड़ते हैं। गली-मुहल्ले में कोई नया आदमी, नई गाड़ी, नया खेल-तमाशा आ जाए, यहाँ तक कि कोई पागल, कोई लीडर या बारात आ जाए, सबसे पहले जाकर बच्चे ही उनसे जुड़ते हैं। नए देश, नई जगह और अनजान भाषा / बोली को भी सबसे पहले बच्चे ही अपनाते हैं, उसके बाद हम उनसे जुड़ते हैं। फिर हमारे साहित्य में से बच्चों की मौजूदगी क्यों कम होने लगी है...?

"प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का मुख्य केंद्र उसके बच्चे रहते हैं, जिनके लिए कमाया जाता है; ताकि बच्चों को सुखद व बेहतर जिंदगी दी जा सके। अड़ोस-पड़ोस से नाता भी बच्चे ही जोड़ते हैं। गली-मुहल्ले में कोई नया आदमी, नई गाड़ी, नया खेल-तमाशा आ जाए, यहाँ तक कि कोई पागल, कोई लीडर या बारात आ जाए, सबसे पहले जाकर बच्चे ही उनसे जुड़ते हैं। नए देश, नई जगह और अनजान भाषा / बोली को भी सबसे पहले बच्चे ही अपनाते हैं, उसके बाद हम उनसे जुड़ते हैं। फिर हमारे साहित्य में से बच्चों की मौजूदगी क्यों कम होने लगी है...?"

बाल साहित्य : आधे अधूरे चित्र





मनोहर चमोली 'मनु'

प्रकाशन : एन.बी.टी. और रूम टू रीड से दो-दो पुस्तकें प्रकाशित। तीन पुस्तकें प्रकाशनाधीन।

'अंतरिक्ष से आगे बचपन' और 'जीवन में बचपन' बाल कहानियों के संग्रह प्रकाशित।

मराठी में बाल कहानियों की अठारह पुस्तकें प्रकाशित।

देश के हिंदी भाषी राज्यों के बुनियादी स्कूलों में पढ़ने की आदत विकसित कार्यक्रम में अठारह बाल कहानियाँ 'प्रथम' संस्था की ओर से प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल : 9412158688, 7579111144

ई-मेल : chamoli123456789@gmail.com

टेलीविज़न ने रेडियो की लोकप्रियता को कम किया। कारण रेडियो सुनने भर का माध्यम था। टेलीविज़न ने सुनने और देखने के कौशल का भरपूर उपयोग किया। इसी तरह मोबाइल ने फोन की लोकप्रियता को कम कर दिया। फोन एक जगह पर टिका रहता था। सुनने वाले को दौड़कर फोन के पास आना होता था। मोबाइल ने विकल्प दिया और सुविधाएँ बढ़ाई। परिणाम? मोबाइल कंघी, बटुआ और रूमाल की तरह जेब में रहने लगा। इसका अर्थ यह नहीं कि रेडियो और फोन की प्रासंगिकता नहीं है। रेडियो और फोन काल-कवलित हो गए हैं, फिलहाल नहीं। ठीक इसी तरह चित्र मनुष्य की जिंदगी में पहले आए और अक्षर बाद में। अक्षर आए तो कहानियाँ मौखिक से लिखित रूप में भी आ गई। अंततोगत्वा कहानी से एक कदम आगे चित्रकथा बढ़ गई।

लिखी हुई कहानी को पढ़ना एक यात्रा है। पाठक यात्री हो जाता है। वह ऐसे साधन से यात्रा कर रहा होता है, जिसमें उसे आगे और अपने दाँये या बाँये खिड़की से बाहर झाँकने का मौका मिलता है। लिखी हुई चित्रकथा को पढ़ना एक जीवंत यात्रा है। पाठक ऐसा यात्री हो जाता है, जिसके पास ऐसा साधन है जिससे बाहर झाँकने का फलक बहुत बड़ा है।

बच्चों को कहानी पढ़ने से ज्यादा मजा कहानी सुनने में आता है। पहले उन्हें खूब कहानी सुनाई जाए। उसके बाद चित्रकथाएँ, उसके बाद चित्राधारित कथाएँ और फिर वह कहानी पढ़ने की ओर उन्मुख होगा। चित्रकथा का असर बहुत तीव्र होता है, लेकिन यह अधिकतर हर मामले में प्रभावी हो, यह कहना मुश्किल होगा। जैसे एक कहानी कुछ इस तरह से शुरू होती है। 'एक गाँव था। गाँव का एक चबूतरा था। चबूतरे में कुछ महिलाएँ बैठी हुई थीं। गोधूलि की बेला में मवेशी घर लौट रहे थे।' चार वाक्य और चौबीस शब्दों की मशक्कत के बाद कहानी आगे बढ़ती है। अब इसी कहानी को चित्रकथा में कहना बेहद आसान है। एक गाँव था। एक वाक्य और तीन शब्दों से कहानी के चार वाक्यों और चौबीस शब्दों की बात कह दी जाएगी। बशर्ते चित्रकार सारे बिंबों को आसानी से एक चित्र में स्थान देने

में सक्षम हो। इस पर बना चित्र बतौर पाठक मैंने देखा। चित्र में मुझे बहुत कुछ दिखाई दिया। जब दिखाई दिया, तो बहुत सारी बातें समझ में आईं। गाँव का चित्रण है। गाँवों के मकान भी है। चबूतरे में कई महिलाएँ बैठी हैं। बच्चे खेल रहे हैं। पालतू जानवर भी दिखाई दे रहे हैं। पशु-पक्षियों के साथ पेड़ भी हैं। आसमान है। बादल भी हैं।

विश्वंभर की कहानी 'दोस्ती' है। मात्र बीस पंक्तियाँ हैं। एक सौ बीस के आस-पास शब्द हैं। कहानी का आरंभ है—'मैं माही के साथ खेलती। माही मेरा दोस्त।' चित्रकार प्रोइती राय ने कहानी के चित्र बनाए हैं। इन दो वाक्यों के लिए चित्र का फलक देखने लायक है।

"हर कथा पर चित्रकथा नहीं बन सकती। हाँ, हर चित्रकथा को कथा के तौर पर ढाला जा सकता है। हर कथा पर चित्र बनाने संभव नहीं है। चित्रकार यदि स्वयं कहानीकार भी होगा तो भी वह अपनी हर कथा को चित्रकथा में ढाल नहीं सकता। उदाहरण के तौर पर पानी या पेड़ की कथा पर चित्रकथा बनाना सरल काम नहीं है।"

एक लड़की है, जो माही लड़के के साथ खेल रही है। घर के भीतर का कमरा है। एक सफेद लंबी चादर के अंदर माही छिपा है। उसके हाथ और पैर ही दिखाई दे रहे हैं। उसने हरे रंग का नेकर पहना है। नंगे पैर है। लड़की उचक कर चादर के भीतर से झाँक रही है। उसने सितारों से जड़ी फ्रॉक पहनी है। वह नीले रंग की है। माही पीले रंग की शर्ट पहने हुए है। माही के ठीक पीछे फर्श पर ट्रक, एक खिलौना है। बड़ा ही प्यारा। खिलौने में एक धागा भी बँधा हुआ है। कमरे के बाईं ओर एक खिड़की खुली हुई है। बाहर हरी घास और पौधे दिखाई दे रहे हैं। लड़की के ठीक पीछे आधी छिपी बिल्ली भी दिखाई दे रही है। सामने एक बड़ी गेंद है। गेंद की ओट पर चूहा छिपा हुआ है। वहीं पास में लड़की की एक प्यारी-सी दो चुटियों वाली गुड़िया भी गिरी हुई है। लड़की के झबरे से बाल भी चादर के बाहर झाँक रहे हैं।

एक बानगी और। सुधीर की कहानी है 'आईना'। चित्र देबस्मिता दासगुप्ता ने बनाए हैं। कहानी के मध्य दो वाक्य आए हैं। 'एक दिन एक कबाड़ी आया। पुराने सामान के साथ आईना भी उसे दे दिया।' दो वाक्य और चौदह शब्द। चित्रकार ने इसे बखूबी जीवंत बनाया है। सामान लाने-ले जाने वाला रिक्शा चित्र में दिखाया गया है। रिक्शे में एक बड़ा बोरा तुलपन से भरा है तथा बँधा हुआ है। उसमें कबाड़ ठूँसा हुआ लगता है। एक विशालकाय आईना जो रस्सियों की सहायता से खड़ा रखा हुआ है। चार-पाँच बोतल-कंटरनुमा चीजें भी रखी हैं। साइकिल में एक घंटी भी है। कबाड़ी वाले के पैरो में चप्पल है। वह चैकधार लुंगी पहने हुए है। कुर्ता पहने कबाड़ी के सिर पर नमाजी टोपी है। वह दाढ़ी बढ़ाए हुए है। सड़क पर यह रिक्शा दाएँ से बाएँ की ओर जा रहा है।

एक उदाहरण मात्र एक वाक्य का है। प्रेमशंकर शुक्ल ने लिखा है—'नदियाँ पानी की बेलें हैं।' इस एक वाक्य पर चित्र बनाया है नीलेश गहलौत ने। विहंगम, अकल्पनीय। इस पर दो तरह के पाठकों के स्तर पर चर्चा की जा सकती है। पहला वह पाठक है जिसने नदियाँ देखी हैं। बेलें (लताएँ) देखी हैं। दूसरा पाठक वह है जिसने नदी और बेल नहीं देखी है। इन दोनों तरह के पाठक चित्रों की सहायता से भाव, बोध, बिंब और अर्थग्रहण से अपनी समझ को विस्तार देते हैं। दूसरे पाठक के नजरिए पर बात करना मुश्किल है। ठीक उस तरह जिस तरह किसी आदमी का पहले-पहल ट्रेन देखना। किसी यात्री का पहली बार मैट्रो देखना और उस पर पहली बार सफर करना। इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी कल्पनाओं में, उसके अपने अनुभवों में ट्रेन या मैट्रो की कोई अवधारणा, खाका नहीं होगा। मैं अपनी बात करता हूँ मेरे लिए पहली बार समुद्र देखना एक विशालकाय अनुभव था। दूसरे शब्दों में हवाई यात्रा का अनुभव मेरे लिए अभी एकदम नया होगा। जिस दिन मैं अपनी पहली हवाई यात्रा कर रहा हूँगा, तो मेरे आनंद की सीमा क्या होगी, इस पर अभी कहना मुश्किल है। यह भी संभव है कि मुझे हवाई यात्रा के बाद एक रात नींद ही न आए। यह भी संभव है कि मुझे हवाई यात्रा पसंद ही न आए। बहरहाल, पहले पाठक के तौर पर हम नदियों और बेलों के चित्र पर आते हैं।

चित्रकार ने 'नदियाँ पानी की बेलें हैं', के लिए जो विहंगम चित्र बनाया है, वह बेहद रोचक बना है। ऐसा लगता है कि पाठक बहुत ऊँचाई से इस दृश्य को देख रहा है। यह भी संभव है कि वह हवाई जहाज से जो अभी-अभी आसमान की ऊँचाई पर जा रहा हो। बर्फ से ढके पहाड़ के अलावा सामान्य पहाड़ भी दिखाई दे रहे हैं। बादल भी हैं। आसमान में दो हंसों का जोड़ा उड़ रहा है। शंकुधारी वृक्ष दिखाई दे रहे हैं। बारिश होती भी दिखाई दे रही है। लगभग छह छोटी बड़ी नदियाँ पहाड़ों से ढलान उतरती हुई नीचे की ओर बढ़ रही हैं। पैराशूट पर दो आदमी नीचे उतर रहे हैं। नदियों के किनारे कई बस्तियाँ दिखाई दे रही हैं। बाँध दिखाई दे रहा है। जल प्रपातों की संख्या भी हैं। उच्च वोल्टेज की ओवर हैड लाइनें भी दिखाई दे रही हैं। जलमग्न धरती के भाग भी हैं। औद्योगिक संस्थान भी दिखाई दे रहे हैं। एक विशालकाय नदी में तो, कई नौकाएँ भी दिखाई दे रही हैं। हाथी सहित कई वन्य जीव भी दिखाई दे रहे हैं। औद्योगिक संस्थानों की चिमनियों से उठता धुआँ भी दिखाई दे रहा है। गौर से देखने पर अनुमान और कल्पना के स्तर पर तो बहुत कुछ है, जो न दिखाई देते हुए भी मन-मस्तिष्क को उद्वेलित करता है।

यह कहना ठीक न होगा कि हिंदी साहित्य में ऐसी किताबें हैं ही नहीं, जिनके चित्र किताब को और भी प्रभावी बनाते हैं। केंगसम केंगलम कृत 'माँ के समान और कौन' एक बेहतरीन किताब है। इसके चित्र रॉबिन बरुवा ने बनाए हैं। यह किताब नेहरु बाल पुस्तकालय के तहत भारत के राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने प्रकाशित की

है। मूल असमिया पांडुलिपि से अनुवाद रमेश कुमार ने किया है। कथा भी सशक्त है, लेकिन चित्रों ने इसे बेहद सजीव कर दिया है। चार साल से तेरह साल के दर्जनों बच्चों को जब सचित्र इस कहानी को पढ़कर सुना-सुनाया जाता है, तो हर बार नए अनुभव सामने आते हैं। सबसे बड़ी बात इस पुस्तक के चित्र रहस्य, रोमांच पैदा करते हैं। तर्क और जिज्ञासा की पीठ पर सवार होकर बाल पाठक कई तरह के सवाल उठाते हैं। कहानी एक ऐसे समय की है, जब गाँव के लोग पशु-पक्षियों का शिकार कर जीवन यापन करते थे। बचपन से ही बच्चों को तीर-धनुष से शिकार करना सिखाया जाता है। एक महिला के बेटे पर केंद्रित इस कहानी में बेटा एक विशालकाय पेड़ पर बाज के बच्चों के शिकार करने, उनसे संघर्ष करने और बाज के बच्चों को हासिल करने के लिए बच्चे की तैयारी पर केंद्रित है। कैसे वह उस विशालकाय पेड़ पर चढ़ता है और सुबह से शाम तक नर-मादा बाज से लड़ता है। बाज माता-पिता और शिकारी बेटे की माँ के बीच का जो चित्रण यहाँ हुआ है, वह बहुत ही मनभावन है। पुस्तक के चित्र बच्चों को भिन्न-भिन्न प्रकार के सवाल उठाने को प्रेरित करते हैं।

एक कार्यशाला में इस कहानी पर विहंगम बात हुई तो बच्चों ने अपनी राय प्रकट की। बच्चे ऐसे गाँव की कल्पना करने में सफल रहे जहाँ साधारण मानवीय जीवन सुलभ नहीं है। मनुष्य के जंगली और खानाबदोश से सभ्य नागरिक होने की यात्रा की ओर बच्चे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। बेटे का चुपचाप माँ को बिना बताए जंगल की ओर जाना बच्चों को खलता है। बच्चों को पशु-पक्षियों का शिकार करना अच्छा नहीं लगता है। बच्चों की सहानुभूति बेटे के साथ होती है, तो बाज जोड़े का बच्चे पर हमला कर पेड़ से नीचे गिराना भी ठीक लगता है। बच्चे जीव ही जीव का भोजन है को समझते हैं तो बच्चे यह भी सवाल करते हैं कि जो कल ठीक था आज गलत है। आज जो सही माना जाता है भविष्य में गलत भी माना जा सकता है।

जाहिर सी बात है कि चित्रकथाएँ और चित्राधारित कथाएँ तीव्र असर करती हैं। बच्चों में तो यह कारगर हैं ही, लेकिन इसकी सीमाएँ भी हैं। चित्र आकर्षक हों और कथा लचर तो यह पठनीयता को कम भी कर सकती है। अकसर चित्र कथा के हिसाब से उसके आस-पास बनाए हुए दिखते हैं। जबकि वह उससे आगे के होने चाहिए। जाड़ा आया। सर्दियों में पहनने वाले गरम कपड़ों में एक लड़का-लड़की दिखाने से बेहतर होगा कि जाड़े को पहनने-खाने-ओढ़ने के अलावा भी देखा जाए। सर्दियों में पशु-पक्षियों की स्थिति, पेड़ों की स्थिति का वर्णन भी हो सकता है। चित्रकथा और चित्राधारित कथाएँ पाठ्यपुस्तक नहीं हैं। साधारण चित्रों से काम नहीं चलाया जा सकता। यह कॉमिक्स भी नहीं हैं कि चाचा चौधरी और साबू हर चित्र में केवल मुद्राएँ बदलते हुए दिखाई देंगे। चित्रकथा का हर एक चित्र बीज से अंकुरण, अंकुरण से पौधा और पौधे से वृक्ष बनता हुए आगे बढ़े। वृक्ष भी मौसम के हिसाब से अलग-अलग रंग-रूप में दिखाई देगा। फलों से लदे रूप में अलग, हरी-भरी पत्तियों से भरा अलग और पतझड़ में अलग।

हर कथा पर चित्रकथा नहीं बन सकती। हाँ, हर चित्रकथा को कथा के तौर पर ढाला जा सकता है। हर कथा पर चित्र बनाने संभव नहीं है। चित्रकार यदि स्वयं कहानीकार भी होगा तो भी वह अपनी हर कथा को चित्रकथा में ढाल नहीं सकता। उदाहरण के तौर पर पानी या पेड़ की कथा पर चित्रकथा बनाना सरल काम नहीं है। एक पेड़ खड़ा है। उसकी कितनी मुद्राएँ चित्र के माध्यम से खींची जा सकती हैं। अमूर्त चीजों पर आधारित कथाओं पर चित्रकथा एक ढर्रे पर चलने लगेगी। चित्रकथा तभी रोचक होगी जब हर चित्र पहले चित्र से नायाब हो, भिन्न हो।

चित्रकथा की एक कमजोरी भी है। जब कहानीकार बिना चित्र के कथा में कहता है कि एक था राक्षस, तो बतौर एक-एक पाठक अपने अनुभव के आधार पर अपने मन-मस्तिष्क में अपने स्तर पर उस राक्षस का रेखाचित्र विशिष्ट-सा खींच रहा होता है। शायद मैं सींग वाला राक्षस न समझ रहा हूँगा। आप गेंद की तरह बड़ी आँखों वाले राक्षस का रेखाचित्र खींच रहे होंगे। कोई तीसरे पाठक के जहन में काले-कलूटे राक्षस की तस्वीर उभर रही होगी। वहीं जब यह कहानी चित्रकथा में एक था राक्षस से आरंभ होगी तो जाहिर-सी बात है कि पहला ही चित्र एक राक्षस का होगा। एक चित्र, लेकिन चित्रकथा पढ़ने वाले तीनों पाठकों के मन-मस्तिष्क में अब एक-सा चित्र पैठ बना रहा होगा। अब यदि एक था राक्षस वाली कहानी को तीन भिन्न चित्रकार चित्रकथा का आकार देंगे और वह तीनों चित्रकथाएँ एक पाठक को पढ़ने को मिलें तो वह अनुभूति कल्पना से परे होगी।

बच्चों को ध्यान में रखते हुए जो चित्रकथाएँ भारत में (कॉमिक्स नहीं) छपती हैं। वे कला, समझ, अनुमान और कल्पना के स्तर पर इतनी प्रभावी नहीं हैं, जितनी प्रभावी विदेशी चित्रकथाएँ हैं। इसके पीछे कई कारण हैं।

हाँ, कथा से इतर चित्रकथा बेहद श्रमसाध्य, समयसाध्य और अर्थ की दृष्टि से भी बेहद खर्चीला है। विदेशों में चित्रकथाओं पर बहुत काम होता है। भारत में किसी भी पत्र और पत्रिका में कथा और चित्रकथा को प्रायः मैं 10:1 अनुपात के तौर पर देखता हूँ। कई बार तो कई अंकों बाद बमुश्किल एक चित्रकथा पढ़ने को मिलती है। जो ज्यादा चाहिए, वे ही कम हैं। वहीं दूसरी ओर कथाकार बहुत हैं पर चित्रकार कम हैं। हैं भी तो कथा को विस्तार देने वाले और चित्रों में प्राण भरने वाले तो गिनती के हैं। गिनती के हैं, तो उनके काम का पारिश्रमिक देने वाले कितने हैं। तपकर नए रंग रूप में आने वाली चित्रकथाओं को जितनी बार पढ़ो, वे नए अर्थ देती हैं। चित्रकथाओं का प्रायः अभाव खलता है।

हिमाचली बच्चों के खेल





पवन चौहान

जन्म : 3 जुलाई 1978

शिक्षा : बी.एस.सी., एम.एस.सी.

संप्रति : टी.जी.टी. (नॉन-मैडिकल)

प्रकाशन : विभिन्न पत्रिकाओं, वेब पत्रिकाओं में कहानियों, कविताओं का प्रकाशन, अनुवाद एवं संपादन, प्रमुख समाचार पत्र, पत्रिकाओं में प्रकाशित फीचर व लेख। इसके अलावा शिमला दूरदर्शन और शिमला आकाशवाणी से कहानी और कविता पाठ।

सम्मान : 'फेगड़े का पेड़' कविता को वर्ष 2017 का प्रतिलिपि संपादकीय चयन कविता सम्मान, साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा (राजस्थान) द्वारा बाल कहानी के लिए 'हिंदी साहित्य भूषण' सम्मान आदि।

संपर्क : मो.: 98054-02242, 094185-82242

ईमेल : chauhanpawan78@gmail.com

समय कितनी जल्दी बीत जाता है और अपने साथ न जाने कितने ही मीठे-कड़वे अनुभवों को जोड़ता चला जाता है। उम्र बढ़ने के साथ पारिवारिक, सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाने के क्रम में तो वह फिर जिंदगी की चुनौतियों, मुश्किलों में उलझता ही जाता है। जब कोई इन उलझनों में उलझा कभी एकांत में बैठा किसी बच्चे की आजादी, उसकी निश्छल हँसी को देखता होगा तो अवश्य ही वह भी उतर जाता होगा अपने बचपन की गहराई में, उन बचपन के मस्ती भरे खेलों में। उस उम्र को याद करते हुए व्यक्ति बस यही सोचता होगा—

आज फिर याद आए बचपन के
वे सारे खेल
वही मस्ती वही बच्चों की रेलमपेल
जिंदगी तू क्यों गुजर गई इतनी तेजी से
हर बढ़ती उम्र पूछे बस यही एक सवाल

बचपन के यह सारे खेल जहाँ बच्चों का खूब मनोरंजन करते हैं, वहीं इन खेलों में समाहित रहती है—सामुहिक व्यवस्था, एक-दूजे की सहायता, लीडरशिप क्वालिटी, दोस्ती, मासूम-सी दुश्मनी, हल्की-सी रुठन, थोड़ा-सा गुस्सा, मनाना, झूठी-सी अकड़ और भी कुछ जो बचपन का सही मायने में अहसास करवाता है। 12 जिलों के प्रदेश और 55673 वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में फैले पहाड़ी प्रदेश हिमाचल में भी बच्चे ऐसे ही बहुत से खेल खेलते थे, खेलते हैं। आइए, इन खेलों का जिक्र जिला मंडी के खेलों को आधार मानकर बारी-बारी से करते हैं।

चहुएँ—इस खेल में जमीन पर कुछ क्षैतिज और खड़ी लाइनें लगाई जाती हैं। इन लाइनों के बीच बनी जगह पर एक चपटे पत्थर को एक टांग पर उछलकर पंजे से ठोकर लगाते हुए इन खानों के बीच संतुलन बनाकर आगे-पीछे खिसकाया जाता है।

ल्हुख लखाड़ी—यह छुपन-छुपाई का खेल है जिसमें खिलाड़ियों की संख्या की कोई सीमा नहीं है।

आँख पर पट्टी बाँधना—इस खेल में किसी एक बच्चे की आँख पर पट्टी बाँधकर वह अन्य बच्चों को छूने की कोशिश करता है। जिसको पट्टी वाले बच्चे ने छू लिया

वह आउट हो जाता है और फिर उसकी आँख पर पट्टी बाँध दी जाती है।

डन्ड-गुल्ली–इस खेल के मुख्य बिंदु हैं, एक छोटा लकड़ी का टुकड़ा जिसे 'गुल्ली' कहते हैं, जो दोनों ओर से हल्का पैना छिला होता है तथा दूसरा लकड़ी का ही एक छोटा डंडा। इस छोटे टुकड़े को बड़े डंडे से एक तरफ से उछाला जाता और इसी डंडे से गुल्ली को उछाल-उछाल कर गिनती करने के पश्चात उसी डंडे से पीटकर दूर, जितनी दूर हो सके फेंक दिया जाता है। फिर उसी गुल्ली से एक फिक्स जगह पर रखे उस बड़े डंडे पर निशाना साधना होता है।

पिट्ठु–पिट्ठु एक ऐसा खेल है, जिसमें बहुत सारे छोटे-छोटे चपटे पत्थरों को एक ढेरी से गिराने पर खेल के दौरान फिर से उनकी चिनाई की जाती है। लेकिन इस दौरान चिनाई करने वाले खिलाड़ियों को दूसरी टीम के खिलाड़ियों द्वारा उनको मारी गई गेंद से बचना भी होता है। ऐसा ही एक खेल है 'बिचक बिल्ली' जिसमें आर-पार खड़े दो खिलाड़ियों द्वारा फेंकी गई गेंद से बीच में खड़े खिलाड़ियों को बचना होता है।

पंजघटड़े–पंजघटड़े अर्थात पाँच छोटे-छोटे पत्थरों की गिट्टियों से खेला जाने वाला खेल। इस खेल को बच्चे एक जगह पर बैठकर गिट्टियों को हवा में हल्का-सा उछाल और कैच कर खेलते हैं।

लंगड़ी टाँग–लंगड़ी टाँग में एक टाँग पर उछल-उछल कर दूसरे खिलाड़ी को छूना होता है। इसी से ही मिलता-जुलता खेल 'लंगड़ी दौड़' भी है जिसमें एक टाँग पर उछल-उछल कर दौड़ लगाई जाती है।

इमली गुट्टी–इसमें चार खिलाड़ी होते हैं, जो अपनी गिट्टियों के साथ जमीन पर बनी वृताकार आकृति, जिसको दो व्यासों की सहायता से चार बराबर हिस्सों में बाँटा गया होता है, के चारों बिंदुओं पर मौजूद रहते हैं। यह लूडो की तरह का खेल है। इसको खेलने के





लिए इमली, आड़ू, खुबानी या चूली के दो बीजों को दो बराबर हिस्सों में फाड़ा जाता है। इनसे बनने वाले चारों टुकड़ों को पासे की तरह इस्तेमाल किया जाता है। इनकी सहायता से गिट्टियों को वृत के केन्द्र तक पहुँचाना होता है। इस तरह का ही एक अन्य खेल है 'मार गुड चार'। लेकिन इसमें खेलने के लिए आयताकार या वर्गाकार छोटे-छोटे खाने रहते हैं।

चूहा दौड़ बिल्ली आई–इस खेल को 'कोरड़ा' भी कहा जाता है।

कोरड़ा छमाके जिम्मे रात आई है,
जिसने पीछे देखा उनकी शामत आई है।

यह लाइनें रेडर द्वारा बार-बार दोहराई जाती है। गोल दायरे में बैठे बच्चों के पीछे रेडर घूमता हुआ, दुपट्टे को चालाकी से किसी बच्चे के पीछे रख देता है। यदि दुपट्टा रखने का पता चल जाए तो वह रेडर को दौड़ाता है अन्यथा रेडर ही उस बच्चे को दुपट्टे से दौड़ा दौड़ाकर नकली में पीटता है। इस दौरान सभी बैठे हुए बच्चे और दौड़ाने वाला दोहराते हैं–

चूहा दौड़ बिल्ली आई
चूहा दौड़ बिल्ली आई....

कंचों का खेल–इस खेल की शर्त बस यही है कि खिलाड़ी के पास कंचे होने चाहिए। जमीन पर एक हल्का-सा छेद करके, जिसमें अपनी बारी के अनुसार अंगूठे को जमीन से टिकाकर और उंगली में कंचे को फँसाकर कंचे को निशाना लगाकर दोबारा छेद में कंचे को घुसाना होता है। ऐसा ही खेल अखरोटों के साथ भी खेला जाता है, लेकिन इसमें खड़े होकर ही जमीन पर खींचे वर्गाकार या आयताकार निशान की सीमा में रखे अखरोटों पर निशाना साधना होता है।

पर्ची वाला खेल–इसमें कागज की पर्चियाँ बनाकर और उसमें कुछ नाम लिखकर (राजा, रानी, चोर, सिपाही) उन्हें अंक दिए जाते हैं। चारों पर्चियों को आपस में खूब मिलाने के पश्चात, चारों खिलाड़ी



एक-एक पर्ची को उठाते हैं। पर्ची उठाने के बाद राजा पूछता है, 'मेरा सिपाही कौन है?' सिपाही की पर्ची वाला अपने सिपाही होने की पुष्टि करता है। फिर राजा के आदेशानुसार वह दोनों बची पर्चियों में से चोर का पता लगता है। यदि उसने चोर की पर्ची वाले के बारे में सही बता दिया तो ठीक, वरना गलत बताने पर उसे अपनी पर्ची को चोर की पर्ची के साथ बदलनी पड़ती है जिससे उसके अंक सबसे कम हो जाते हैं। ऐसे कई बारियाँ खेली जाती हैं और सबसे ज्यादा अंक लेने वाला विजयी बनता है।

अटके-मटके दही चटाखे–इसमें सभी खिलाड़ी अपने दोनों पंजों को जमीन या समतल जगह पर एक साथ लाइन में रख देते हैं, जिसमें से एक खिलाड़ी अपनी उंगली से हरेक खिलाड़ी के पंजे के ऊपर उंगली को छूता हुआ यह दोहराता है–

अटक-मटक दही चटाखे,
अल मलोरे पटखे डोरे,
हम जम कीड़ी कांडा,
राजा गोपी चन्द।

जिसके पंजे पर बोलते हुए अंत में 'चन्द' शब्द आ जाए, वह उस पंजे को उलट देता है और यदि दोबारा से दोहराने पर उस उलट किए पंजे पर 'चन्द' शब्द आ जाए तो वह अपने उस पंजे को पीठ के पीछे ले जाता है। ऐसा अंतिम खिलाड़ी तक चलता है। जो बच जाता है वह हार जाता है। यह 'अक्कड़-बक्कड़ बम्बे बो.....' वाला ही खेल है।

घर-घर का खेल–यह खेल ज्यादातर लड़कियाँ खेलती हैं, जिसमें वे अपने किसी पसंदीदा ठिकाने पर गत्ते, दुपट्टे या किसी अन्य तरीके से घर बनाती हैं और खूब सारे फूलों, पत्तों, घास आदि से सजाती हैं। बता दें यह खेल उस समय खेला जाता है जब बसंत अपने यौवन पर होता है और प्रकृति कई प्रकार के फल तथा फूलों से लदी होती है। इस खेल में बच्चे एक-दूसरे को मेहमान के रूप में बुलाते हैं और उनके आने पर उन्हें प्रकृति से मिले फल जैसे खरनु, कशमले, आखे, बेर या अन्य दूसरी चीजें भोजन के रूप में परोसी जाती हैं। यह खेल एक भोले से समाज का चित्रण बखूबी प्रस्तुत करता है।

राणीए राणीए बाहर निकल–यह बहुत ही प्यारा और मनोरंजक खेल है। इस खेल में बच्चा एक बारीक-सी लकड़ी लेकर उसे जमीन पर एक खास जगह पर कुछ पंक्तियाँ दोहराते हुए गोल-गोल घुमाता है, जिसके घुमाने पर एक छोटा-सा मिट्टी के रंग का जीव (एक छोटा कीड़ा) जमीन से निकलता है। जिला मंडी में इस जीव को 'राणी' या फिर 'कोल्हू मामा' कहते हुए यह पंक्तियाँ दोहराई जाती हैं–

'राणीए राणीए बाहर निकल
राजा आइरा'
या फिर
'कोल्हू मामा कोल्हू मामा
तेरे घरा चोर'।

जिला सिरमौर में इस जीव को 'गुग्गु' कहकर संबोधित करते हुए कहते हैं–'गुग्गु गुग्गु तेरे घर में चोर'।

जिला बिलासपुर में इस जीव को 'बुढ़ी,' कहा जाता है–

'बुढ़ी, बुढ़ी, बाहर निकल,
तेरे घरा पइरे चोर'।

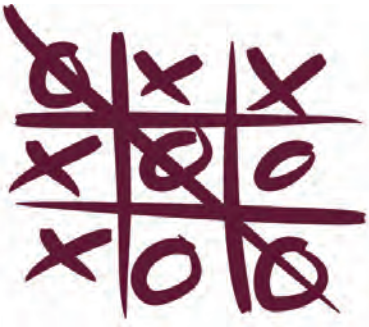
यदि यह लाइनें दोहराते हुए जीव निकल आए तो खिलाड़ी जीतता है और यदि न निकले तो वह हार जाता है।

उड़ चीड़ी, उड़ तोता–इसमें सभी बच्चे जमीन पर या किसी समतल पृष्ठ पर एक-एक उंगली या फिर अपना एक पंजा रखते हैं। इन सभी में एक बच्चा लीडर का रोल अदा करता है, जो खिलाड़ियों को थोड़ा-सा पज़ल करते हुए बार-बार दोहराता है–'उड़ चीड़ी, उड़ तोता' या 'उड़ चीड़ी, उड़ घोड़ा' या फिर 'उड़ चीड़ी, उड़ हाथी'.....। यदि किसी ने गलती से उस प्राणी के उड़ने पर हाथ उठा लिया जो



उड़ता नहीं है, तो वह खेल से बाहर हो जाता है। अंत तक बचने वाला खिलाड़ी विजयी बनता है।

जीरो-काटा–इसे दो बच्चों के बीच में खेला जाता है, कॉपी पर या फिर



जमीन पर कुछ वर्गाकार खाने बनाकर। इन खानों में एक खिलाड़ी जीरो (शून्य) तो दूसरा काटा (क्रॉस) भरता जाता है। यह एक त्वरित प्रक्रिया वाला खेल है, जिसमें यदि किसी खिलाड़ी के क्षैतिज, खड़े या तिरछे काटा या जीरो एक साथ लगातार बन जाते हैं, तो उसको प्वांइट मिल जाते हैं। ऐसे खेलते हुए अंत तक जिसके ज्यादा अंक होंगे वही विजेता होता है।

कन्चोह–यह वह खेल है, जिसे दो खिलाड़ी खेलते हैं। इस खेल को खेलने का अपना ही अलग तरीका है। जमीन पर कुछ संख्या में दो समांतर पंक्तियों में हल्के गहरे छेद किए जाते हैं। इन छेदों को बराबर पत्थर की गिट्टियों से भर दिया जाता है। फिर एक खिलाड़ी किसी अपने खाने से गिट्टियों को उठाकर, एक-एक गिट्टी इन छेदों में रखता हुआ आगे बढ़ता रहता है। जहाँ ये गिट्टियाँ खत्म हो जाती हैं वह उसके बाद अगले खाने से गिट्टियों को उठाकर फिर बराबर सभी छेदों में एक-एक गिट्टी को रखता चला जाता है। फिर जब अपनी तरफ वाले छेदों में तीन गिट्टियाँ इकट्ठी हो जाएँ तो वह गिट्टियाँ निकालकर अपने पास बाहर रख लेता है। इसे 'गाय का सुणा' (गाय का बच्चे को जन्म देना) कहते हैं। खेल के अंत तक जिसके पास सबसे ज्यादा गिट्टियाँ आएँगी वह विजेता बनता है।

खसतो पंजो खाल समुद्र देहली–यह खेल पाँच बच्चों के बीच खेला जाता है। जिनके नाम खसतो, पंजो, खाल, समुद्र और देहली होता है। वे इन नामों को एक बार बोलते हुए अपनी बंद मुट्ठियों को आपस में बजाते हैं और फिर अपनी-अपनी संख्या के अनुसार उंगलियों को समतल जमीन पर रख देते हैं। उसके बाद फिर से दोबारा हरेक उंगली को छूते हुए यही पाँच नाम दोहराए जाते हैं। जिस खिलाड़ी की उंगली पर अंतिम शब्द इन पाँचों में से कोई भी आ जाए वह खिलाड़ी खेल से बाहर हो जाता है। यह प्रक्रिया दूसरे अंतिम खिलाड़ी तक दोहराई जाती है। जो खिलाड़ी बच जाता है, वह हारा हुआ माना जाता है और उसे अन्य चार खिलाड़ी मजाक-मजाक में पीटते हैं।

ऊँच नीच का पापड़ा–इस खेल में जितने मर्जी खिलाड़ी भाग ले सकते हैं। सभी खिलाड़ी किसी हल्की-सी ऊँची जगह पर खड़े हो जाते हैं। इस खेल में एक रेडर होता है जिसे उस खिलाड़ी को छूना होता है जिसके पाँव दौड़ते समय किसी ऊँचे स्थान पर न पहुँच पाए और रेडर उसे छू ले। वह आउट हो जाता है। छूने वाला उसे फिर चिढ़ाते हुए कहता है–'ऊँच नीच का पापड़ा, गधे ने मारा झापड़ा'।

मुट्ठी में छुपाना–मुट्ठी में किसी चीज को लेकर छुपा लिया जाता है और फिर सामने वाले को थोड़ा पज़ल करते हुए किस मुट्ठी में वह चीज छुपाई है, के बारे में पूछा जाता है। यदि सामने वाले खिलाड़ी ने सही मुट्ठी को छू लिया तो वह जीत जाता है अन्यथा उसकी हार होती है और दोबारा पहले वाले खिलाड़ी की ही बारी आती है।

छौदरो–छौदरो अर्थात बरकत। यह खेल जनजातीय जिला किन्नौर से संबंधित है। यह खेल उस समय बहुत प्रचलित था जब किन्नौर में अनाज की बहुत कम पैदावार होती थी। इस खेल में बच्चों की दो टीमें–'अनाज झाड़ने वाली' और 'अनाज को ढोने' वाली होती हैं। अनाज ढोने वाली टीम की छोटी लड़कियों को जेबों में भरे अनाज को इस खेल के जरिए अनाज की ढेरी पर उलटाना होता था। लोगों का मानना था कि ऐसा करने से अनाज में बरकत होती है।

"इन सारे खेलों का अपना-अपना महत्त्व है। ये खेल जहाँ मनोरंजन का खजाना हैं, वहीं गणित व विज्ञान आदि के साथ कई सकारात्मक सामाजिक पक्षों से भी बच्चों को रु-ब-रु करवाते हैं। मेरा मानना इतना ही है कि कुछ समय के लिए अभिभावक अपने बच्चों को उपरोक्त खेलों में अवश्य शामिल करवाएँ ताकि बच्चा सही मायने में एक अंदरुनी खुशी के साथ, अपने बचपन की थाह पा सके।"

रुमाल वाला खेल–इस खेल में दो टीमें होती हैं। जमीन पर बने एक वृताकर क्षेत्र से इन खिलाड़ियों को फुर्ती के साथ रुमाल उठाकर दोबारा अपनी सीमा में लौटना होता है।

इसके अलावा और भी खेल हैं, जिन्हें बच्चे बड़े ही चाव से खेलते हैं। इसमें हम टिपी-टिपी टॉप-टॉप, सलामी, मिट्टी से गाड़ियाँ व अन्य चीजें बनाना, तीर कमान, गुलेल से निशाना लगाना, तितली या ड्रैगन फ्लाई पकड़ना, आइस वाटर या विष अमृत, पिकाचु, डॉल्फिन, बुसंग माड़ो, ठक-ठक कौन आया, आओ मिलो सीलो सालो, रूप बदलने वाला भूत आदि अनेक खेलों को शामिल किया जा सकता है।

इन सारे खेलों का अपना-अपना महत्त्व है। ये खेल जहाँ मनोरंजन का खजाना हैं, वहीं गणित व विज्ञान आदि के साथ कई सकारात्मक सामाजिक पक्षों से भी बच्चों को रु-ब-रु करवाते हैं। मेरा मानना इतना ही है कि कुछ समय के लिए अभिभावक अपने बच्चों को उपरोक्त खेलों में अवश्य शामिल करवाएँ ताकि बच्चा सही मायने में एक अंदरुनी खुशी के साथ, अपने बचपन की थाह पा सके।

भाषा की कक्षा में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अवसर



शिक्षा और भाषा के मुद्दों पर काम करने के कारण अक्सर विद्यालयों में जाना होता है। बच्चों के साथ बैठना और उनसे बातें करना भी मेरे काम में शामिल होता है। तो विद्यालयों में भ्रमण के दौरान स्पष्टरूप से यह देखने में आया कि शिक्षण में नवाचारों के प्रयोग और बालकेंद्रित प्रयासों को गति देने के आग्रहों के बाद भी शिक्षकों के अध्यापन के तौर-तरीके न केवल परंपरागत शिक्षक केंद्रित, भय एवं दंड प्रधान हैं बल्कि कक्षाओं का वातावरण बोझिल, अरुचिकर और नीरस बनाए रखने के लिए जिम्मेदार भी हैं। कुछ स्वप्रेरित शिक्षकों को छोड़कर, अभी भी शिक्षकों के एक बड़े हिस्से द्वारा ऐसे कोई सकारात्मक प्रयास नहीं किए जा रहे हैं, जिससे बच्चों को विद्यालय अपनी सपनीली जगह लगे। हम बच्चों को यह एहसास नहीं दिला पाए हैं कि विद्यालय वह रचनात्मक स्थान है जहाँ वे अपने सपनों की उड़ान भर सकते हैं, कल्पना को मूर्त रूप प्रदान कर सकते हैं। विद्यालय उस फलक की तरह नहीं उभर पाया जहाँ बच्चे मौलिक चिंतन को अभिव्यक्त कर सकें और विचारों का आदान-प्रदान कर सकें। कक्षा में प्रस्तुत विषय पर उनके अभिमत देने के लिए कोई जगह नहीं बन सकी है। आज भी बच्चों के दिलो-दिमाग में शिक्षक हावी है। विद्यालय उसे अपना-सा लगे और यह तभी संभव होगा जब शिक्षकों को हर बच्चा अपना-सा लगने लगे।

एक प्राथमिक विद्यालय में मेरा जाना हुआ। मैं बरामदे में प्रधानाध्यापक के साथ बैठा था। वह विद्यालय के अभिलेख एवं पंजिकाएँ आदि दिखा रहे थे। निश्चित रूप से सभी पंजिकाएँ साफ-सुथरी, सुंदर लिखावट में थीं। बगल के कक्ष से किसी शिक्षक के पढ़ाने की ध्वनि आ रही थी। संभवतः भाषा की कक्षा थी। शिक्षक गाय पर निबंध लिखा रहे थे। निबंध कुछ इस प्रकार था, 'गाय के चार पैर होते हैं, गाय की दो आँखें, दो कान, दो सींग होते हैं। एक लंबी पूँछ होती है। चार थन होते हैं। गाय सफेद रंग की होती है। गाय भूसा खाती है। गाय गोबर करती है। गाय हमारी माता है, आदि।' फिर शिक्षक का आदेशात्मक स्वर गूँजा, 'इस निबंध को अच्छी तरह से रट लेना, कल सुनूँगा।' वह शिक्षक एक विशेष प्रकार का संतुष्टि का भाव लिए उस कक्षा से निकलकर दूसरी कक्षा में चले गए। कहना पड़ेगा कि शिक्षक ने अपनी ओर से भरपूर मेहनत की है, लेकिन



प्रमोद दीक्षित 'मलय'

संप्रति : ब्लॉक संसाधन केंद्र नरैनी, बांदा, उत्तर प्रदेश में सह-समन्वयक (हिंदी) पद पर कार्यरत। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक बदलावों, आनंददायी शिक्षण, नवाचारी मुद्दों एवं समुदाय आधारित रचनाधर्मी प्रेरक प्रयासों पर सतत् लेखन एवं प्रयोग।

संपर्क : मो.: 9452085234

ई-मेलः pramodmalay123@gmail.com

क्या इस पूरे पीरियड में एन.सी.एफ.-2005 का तनिक भी असर दिखा। क्या बच्चों का परिवेश से संबंध जुड़ पाया? क्या बच्चों के मन में उमड़ते प्रश्नों को स्थान मिल पाया है? क्या पूरे समय में बच्चों के मन की बातें जानने की कोई कोशिश हुई या बच्चों को गाय को लेकर उनके अपने अनुभव साझा करने के अवसर मिले? एक ही उत्तर मिलेगा—नहीं, बिल्कुल नहीं।

मैं आश्चर्यचकित था कि एक शिक्षक इस प्रकार कैसे पढ़ा सकता है। अब मेरे लिए अवसर मुँह बाए खड़ा था कि मैं उस कक्षा में प्रवेश करूँ और बच्चों से बातचीत करूँ। मेरे कक्षा में जाते ही बच्चे सहम-से गए और खिड़की से बाहर झाँक रहे बच्चे चुप होकर बैठ गए। मैं अनुभव कर रहा था कि बच्चों में एक डर छुपा बैठा है, लेकिन उनमें मेरे बारे में जानने की उत्सुकता थी। मेरे पीछे विद्यालय के

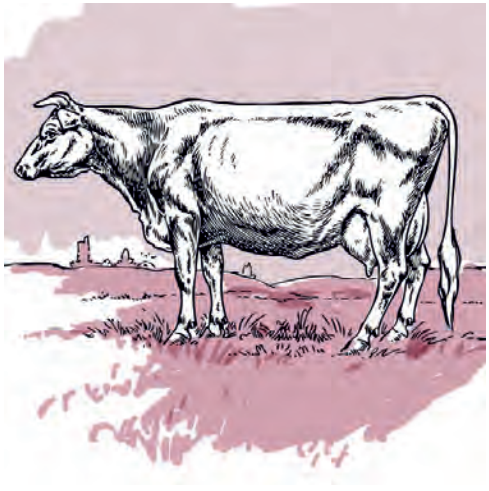
“शिक्षक ने अपनी ओर से भरपूर मेहनत की है, लेकिन क्या इस पूरे पीरियड में एन.सी.एफ.-2005 का तनिक भी असर दिखा। क्या बच्चों का परिवेश से संबंध जुड़ पाया? क्या बच्चों के मन में उमड़ते प्रश्नों को स्थान मिल पाया है? क्या पूरे समय में बच्चों के मन की बातें जानने की कोई कोशिश हुई या बच्चों को गाय को लेकर उनके अपने अनुभव साझा करने के अवसर मिले? एक ही उत्तर मिलेगा—नहीं, बिल्कुल नहीं।”

प्रधानाध्यापक भी खड़े थे। उन्होंने बच्चों से कहा,“चुपचाप सीधे बैठो, ये हमारे अधिकारी हैं। बी.आर.सी. से आए हैं। जो कुछ पूछा जाए सही-सही बताना।” यह कहते हुए वह कक्षा में घूम रहे थे और बिना किसी बात के दो-तीन बच्चों के सिरों पर हल्की चपत भी लगाई। मेरे मना करने पर बोले, “सर, मैं अनुशासन के मामले में बहुत कड़ा आदमी हूँ, मेरे रहते बच्चों की मजाल नहीं है कि कोई टस से मस हो जाए।” मैंने उनसे कहा कि मैं बच्चों से अकेले में बात करना चाहता हूँ। वह यह कहते हुए बाहर निकल गए कि यदि बच्चे शोर या मुझे परेशान करें तो मैं उन्हें तुरंत बुला लूँ। मैंने कहा कि आपकी जरूरत नहीं पड़ेगी।

अब कक्षा में केवल मैं और बच्चे थे। मैंने बच्चों को अपना परिचय दिया और उनसे भी उनका परिचय देने को कहा। एक भी बच्चा नहीं बोला। सभी सिर झुकाए बैठे रहे। मैंने कई बार कोशिश की। एक भी बच्चे ने नाम नहीं बताया। मैंने एक लड़के को उसका नाम बताने को संकेत किया। वह पैरों की कैंची बनाए और हाथों की उंगलियों को आपस में फँसाए सिर झुकाए खड़ा हो गया। मैंने देखा वह सिर झुकाए पैर के अँगूठे से फर्श पर कुरेदने जैसा काम कर था और उंगलियाँ तोड़-मरोड़ रहा था। एक लड़की से पूछा तो उसने अपनी शर्ट का कोना पकड़े छत पर निगाहें जमा लीं। इसी तरह और दो-तीन बच्चों से उनका परिचय जानना चाहा, लेकिन वे अबोले ही रहे। मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि बच्चे अपने नाम क्यों नहीं बता पा रहे। मैं सोच रहा था कि क्या करूँ, कहाँ से बात शुरू करूँ। तभी, शायद कक्षा में नजर जमाए बरामदे में खड़े, प्रधानाध्यापक चिल्लाए, “अरे, मुँह में दही जमाए हो क्या? क्यों नहीं बोलते, वैसे तो आसमान सर में उठाए रहते हो।” मुझसे बोले, “सर आपसे डर रहे हैं, इसीलिए नहीं बोल रहे।” मैंने बच्चों से मेरे चेहरे की ओर देखने को कहा और मैंने अपने चेहरे पर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाईं तो वे सब खिलखिलाकर हँस पड़े उनके साथ मैं भी हँस पड़ा। कक्षा का वातावरण थोड़ा हल्का हुआ। अब वे मुझसे नजरें मिला रहे थे। मैंने ब्लैकबोर्ड में कुछ क्रिया शब्द लिखे—हँसना, रोना, दौड़ना, डरना, गुस्सा करना, चिल्लाना आदि। मैंने बच्चों से पढ़ने को कहा। कुछ पढ़ पाए, कुछ नहीं। अब मैंने कहा कि मैं इनमें से कोई एक शब्द पढ़ूँगा और आप सब वैसी क्रिया-अभिनय करेंगे। मैंने पढ़ा—रोना। बच्चों ने कुछ भी नहीं किया। मैंने कई बार कोशिश की लेकिन बच्चों ने नहीं किया। उन्हें शायद शर्म आ रही थी। वे कुछ झिझक रहे थे। उनके लिए संभवतः यह सब पहली बार हो रहा था। मैंने प्रक्रिया में बदलाव किया। अच्छा तो आप में से कोई एक शब्द पढ़ो और मैं वह क्रिया करूँगा, लेकिन शब्द पढ़ने से पहले अपना परिचय भी देंगे। एक लड़की सकुचाती-सी खड़ी हुई और अपना नाम ‘रजनी’ बोलते हुए शब्द पढ़ा—रोना। तो मैं रोने का अभिनय करते हुए रोने लगा। बच्चे खूब हँसे तालियाँ बजाकर। फिर दूसरे बच्चे ने अपना नाम ‘राज‘ बोला और शब्द पढ़ा—डरना। तो मैंने डरने की क्रिया की। अब बच्चे बातचीत का मजा लेने लगे थे। हर कोई शब्द पढ़ना और मुझे वैसी क्रिया करते देखना चाहता था। शब्द पढ़ने हेतु खड़े होने के लिए बच्चों में होड़-सी शुरू हो गई। वे ‘अब मैं....., अब मैं.....’ अपना नाम बोलते और हाथ से अपने सीने की ओर संकेत करते खड़े होने लगे। इस कारण कक्षा में थोड़ा अफरातफरी का माहौल बन गया और शोरगुल भी होने लगा। मैंने कहा कि सबको मौका मिलेगा। आप सब अपनी-अपनी जगह पर बैठिए। कक्षा में बिल्कुल शांति छा गई और वे सब मेरे चेहरे की ओर टकटकी लगाए देखने लगे। मैं बोला कि अब मैं कोई भी शब्द बोलूँगा और आप सब एक साथ चेहरे पर वैसा भाव लाते हुए क्रिया करेंगे। मैंने कहा—रोटी, तो बच्चों ने रोटी बनाने और खाने का भाव प्रदर्शन किया। नीबू कहने पर उनके चेहरे पर खट्टेपन के भाव उभरे। ऐसे ही जलेबी, गन्ना, मिर्च, दाल-चावल, जाड़ा आदि शब्द बोलने पर बच्चों ने उसी प्रकार की अभिव्यक्ति की। अब बच्चे बिल्कुल खुलकर बातें कर रहे थे। मैं तो बच्चों को गाय पर निबंध लिखने के बारे में बात करने आया था। तो उस दिशा में बच्चों को मोड़ते हुए बातचीत का सिलसिला प्रारंभ किया। तो बताओ, आप लोगों में से किस-किस के पास कोई जानवर है। बच्चे बताने लगे—बैल, भैंस, गाय, कुत्ता, बकरी, भेड़, पड़वा (नर

भैंस), बिल्ली, सुअर आदि। बच्चों ने बातचीत में यह भी बताया कि ये जानवर क्या काम करते हैं। खेती-किसानी और अन्य कार्यों में इनकी क्या उपयोगिता है। यदि ये जानवर न हों तो फिर ये काम कैसे निबटाए जाएँगे। बच्चों ने इस पर भी अपने विचार रखे। अच्छा गाय किनके पास है। लगभग तीन चौथाई बच्चों के हाथ ऊपर उठ चुके थे। आप लोग गाय के साथ क्या करते हो। परिवार के अन्य लोग क्या करते हैं? सुबह से शाम तक गाय के साथ क्या-क्या घटित होता है। तो आप लोग गाय के साथ जैसा भी कार्य-व्यवहार देखते हैं, उन अनुभवों को लिखना है। यह आपका अपना निबंध होगा। जिनके पास गाय नहीं है वे अपने पड़ोसी की गाय पर अपना अनुभव लिखकर लाएँगे। तभी एक लड़की ने कहा कि अभी तो सर ने एक निबंध लिखाया है, तो उसका क्या। मैंने कहा वह एक सूचना है कि अगर कोई जानवर इस प्रकार की पहचान का हो तो उसे गाय कहा जाएगा। ठीक है, कल हम लोग फिर मिलेंगे तो आगे बात करेंगे।

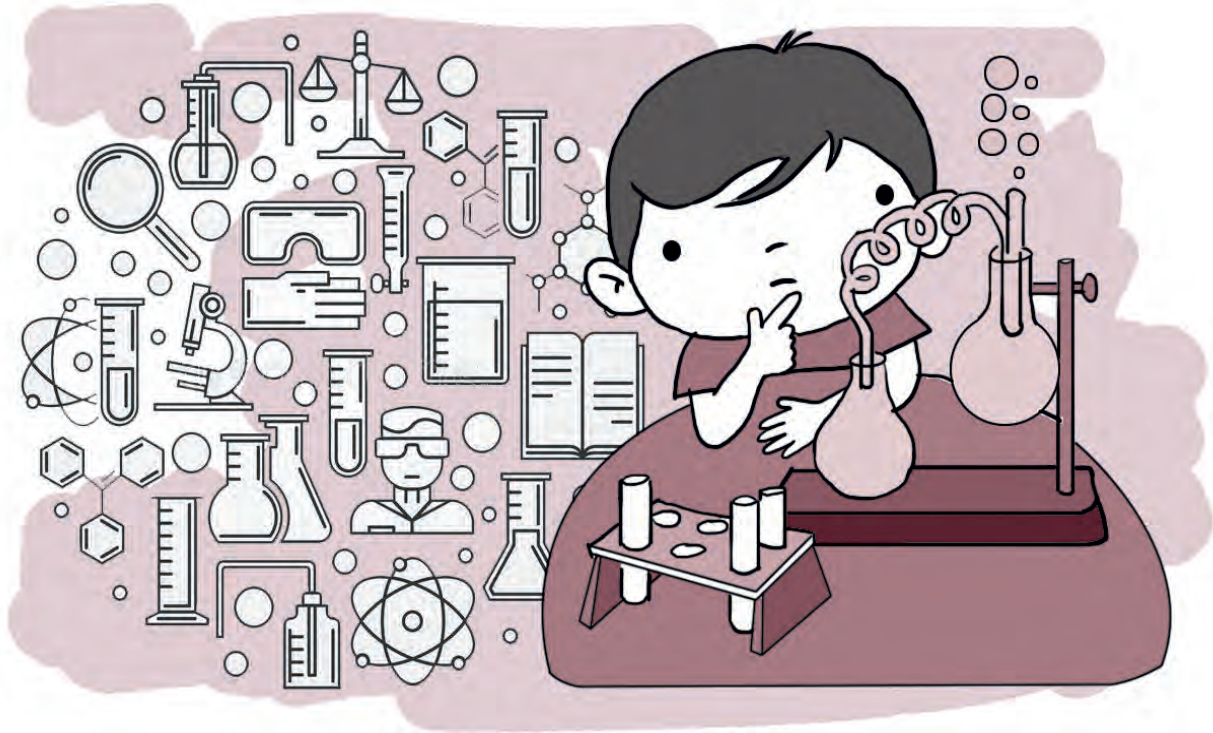
मैं घर आ गया था। अपनी डायरी में आज दिनभर की गतिविधियों को दर्ज करते हुए आँखों से नींद गायब थी। सुबह का बेसब्री से इंतजार था। बच्चे क्या लिखेंगे, कैसे लिखेंगे, यह सब पढ़ने की मन में आतुरता थी। ऐसा लग रहा था कि आज की रात जैसे दो रातों को मिलाकर एक रात बना दी गई हो, लेकिन सुबह तो होनी ही थी।



दूसरे दिन जब विद्यालय पहुँचा तो बच्चे इंतजार करते मिले। मुझे देखते ही सब अपनी-अपनी कॉपियाँ लेकर निबंध दिखाने दौड़ पड़े। हर कोई अपनी कॉपी पहले दिखा लेना चाहता था। मैंने सभी के निबंध देखे। मैं आश्चर्यचकित था कि ये कल के वही बच्चे हैं जो बोल-लिख नहीं पा रहे थे और आज गाय पर अपने अनुभवों के आधार पर निबंध लिख कर लाए थे। सबने अपने निबंध गाय के साथ उनके निजी संबंधों के आधार पर लिखा था। बहुत प्यारी बातें उभर कर आई थीं। गाय और उससे जुड़ी हर छोटी-बड़ी बात को बच्चों ने बखूबी लिखने की कोशिश की थी। उनके लेखन में वर्तनी की बहुत अशुद्धियाँ थीं लेकिन भाषा उनकी अपनी थी जिसमें उनके परिवेश की बोली के शब्द घुले-मिले थे। भाव और उनका प्रवाह सहज था। मौलिक चिंतन तो था ही कल्पना को व्यक्त होने का भरपूर अवसर मिला था। हर निबंध में उनकी अपनी छाप थी, लेकिन दो कॉपियाँ देखकर मैं ठिठका। दोनों में बहुत समानताएँ थीं। दोनों कॉपियों में लगभग एक जैसी बातें लिखी गई थीं। राहुल ने लिखा था, "मेरा बाबू पार साल बल्लान गांव के चंभू बाबा के मेला से एक गाय लाया है। गाय के एक बछवा है। बाबू खेत से हरियार (हरी घास) लाता है। और कटिया मशीन से कतर कै भूसे मा मिलाते हैं। अम्मा भूसे में खरी (खली) से सानी लगाती है और दोहनी करती है। दोहने में मैं भूसा में पिसान धुरुकता हूँ और गाय ढाई लीटर दूध देती है और बाबू सुबेरे पहर का दो लीटर दूध बेच आता है। वहै पैसे का आलू-भाँटा लाते हैं। और कापी, पेन लाता है। इतवार का दूध अम्मा औट लेती है और मिठई बनाती है। और एक पहरे का दूध का माठा भांते है तौ नेनू निकर आता है तौ रोटी मा चुपर लेते है। और नेनू टघराय के एक किलो घी जुहा लिया है। गोबर से अम्मा कंडा पाथती है और सुखा जाने पर चुल्हा मा रोटी बनाने को आग बारते है। मै रोज सुबेरे और स्कूल से लौटने के बाद बछवा को खेलाता हूं और उसके साथे साथ दौड़ता हूँ। गाय पहले सबका मारती थी पर अब नही मारती है।" यह निबंध पढ़कर मन खुश हो गया। बच्चे के अपने भाव, उसकी अपनी भाषा में मातृभाषा में जैसे किसी सरोवर से डुबकी लगा-लगाकर बाहर निकल रहे हों। दूसरी कॉपी आकांक्षा की थी। उसने राहुल की बातों से मिलती-जुलती बातें लिखी थीं। मैंने दोनों को बुलाया और जानना चाहा कि जब सबको अपनी-अपनी गाय पर निबंध लिखना था तो फिर तुम दोनों की कॉपियों में ये बातें एक जैसी कैसे हैं? उनके उत्तर सोचने को मजबूर कर रहे थे। राहुल का कहना था कि उसकी अपनी गाय के साथ दिनभर जो होता है उसे वह देखता है, उसी को लिखा है। आकांक्षा ने कहा कि उसके पास गाय नहीं है। उसने जो निबंध लिखा है वह राहुल की गाय पर है। राहुल उसके पड़ोस में रहता है। राहुल और उसके मम्मी-पापा जो कुछ भी गाय के साथ दिनभर करते हैं, उसे वह देखती है। उसी आधार पर यह निबंध लिखा है। बच्चों का यह प्रयास दिल को सुकून दे रहा था। कुछ बच्चों ने यह भी बताया कि उन्होंने अपने पालतू कुत्तों पर भी इसी प्रकार का निबंध लिखा है। मैं बच्चों में निबंध लेखन की बन गई एक सामान्य समझ देख पा रहा था।

मैं सोच रहा था कि हमारे शिक्षक बच्चों को लेखन के, अभिव्यक्ति के, ऐसे मौलिक अवसर क्यों नहीं उपलब्ध करा पा रहे। बच्चों को मौलिक चिंतन के पर्याप्त अवसर दिए जाने चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में इस बात की बार-बार अनुशंसा की गई है कि बच्चों को रटने के बजाय उनमें समझ विकसित करते हुए, मौलिक चिंतन-मनन के अवसर उपलब्ध कराए जाएँ। हम अपने तरीके लादकर कहीं बच्चों की सोचने-समझने की उसकी मौलिक और प्राकृतिक सोच को कुंद और धारहीन तो नहीं कर रहे, सोचना पड़ेगा।

विज्ञान, गतिविधि और बाल साहित्य





डॉ. मनीष मोहन गोरे

लेखक विज्ञान प्रसार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार में सेवारत हैं और 1995 से विभिन्न संचार माध्यमों के लिए लोकप्रिय विज्ञान लेखन कर रहे हैं।

संपर्क :
ईमेल : mmgore@vigyanprasar.gov.in

बच्चों को अच्छी और ज्ञानवर्धक जानकारी मिले तो उनका बौद्धिक, सामाजिक और व्यावहारिक विकास होता है। ऐसे ज्ञानशील बच्चे भविष्य के अच्छे नागरिक और देश की चतुर्दिक तरक्की के वाहक बनते हैं। बच्चों को उनके जीवन में विद्यालय, घर और खेल के मैदान जैसे हर स्थान से शिक्षा मिलती है। टी.वी., रेडियो, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ और पुस्तकें भी ज्ञान और शिक्षा के समांतर स्रोत होते हैं। विद्यालय से अलग ये अनौपचारिक शिक्षा स्रोत बच्चों के सर्वांगीण विकास में सहायक साबित होते हैं।

बाल साहित्य : स्वरूप व महत्त्व

वह साहित्य और सामग्री जिसमें बच्चों और युवाओं को कहानी, कविता, नाटक, पहेली, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण आदि रोचक संवाद विधाओं के माध्यम से सहज ज्ञान और व्यवहार कुशलता का ज्ञान मिलता है, उसे बाल साहित्य का दर्जा दिया जाता है। ये शिक्षा पाठ्यक्रम सामग्री के सहायक या वैकल्पिक स्रोत के समान होते हैं।

बाल साहित्य का महत्त्व इस बात से उजागर हो जाता है कि अकसर इनसे बच्चों को वह जानकारी मिल जाया करती है, जो आम तौर पर स्कूल के पाठ्यक्रम में उपलब्ध नहीं रहती। इसके अलावा शिक्षक को भी ऐसी अनोखी जानकारी नहीं होती।

अनेक पत्र-पत्रिकाएँ, पाठ्येत्तर पुस्तकें बाल साहित्य के उम्दा स्रोत हैं। दुनिया के मशहूर वैज्ञानिक और जैव विकास के क्षेत्र में



प्राकृतिक चयन के प्रतिपादक चार्ल्स डार्विन ने अपने बचपन, शिक्षा, वैज्ञानिक शोध और उनके परिणामों को समेटते हुए आत्मकथा लिखी थी, जिसे उनके बेटे ने सार्वजनिक किया। उसके बाद डार्विन की आत्मकथा पुस्तक रूप में दुनिया के सामने आई और असंख्य बच्चों और युवाओं को विज्ञान में काम करने की दिशा में प्रेरित, प्रोत्साहित किया। भारतीय पाठकों के लिए इस महत्त्वपूर्ण आत्मकथा को डी.एस.टी. (भारत सरकार) के एक स्वायत्त संस्थान विज्ञान प्रसार ने प्रकाशित किया है। तमाम सरकारी और गैर सरकारी एजेंसियाँ बाल साहित्य के सृजन और प्रसार में जुटी हुई हैं। नेशनल बुक ट्रस्ट भी इस दिशा में एक बृहद उपकरण के रूप में कार्य कर रहा है। असंख्य बाल साहित्यकार इस महत्त्वपूर्ण और अनोखी प्रकृति के साहित्य को रचने का काम करते हैं।

मुद्रण माध्यम के अतिरिक्त श्रव्य दृश्य जनसंचार माध्यम भी बच्चों और युवाओं को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में मार्गदर्शन करते रहे हैं। डिस्कवरी, नेशनल जियोग्राफिक, एपिक, एडुसेट जैसे टी.वी. कार्यक्रमों पर बच्चों, युवाओं और जन सामान्य के लिए अनेक ज्ञानवर्धक कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। आकाशवाणी के देश भर में फैले असंख्य केंद्र निरंतर ज्ञान विज्ञान से जुड़ी सूचना को सरस भाषा शैली में प्रसारित करने के अभियान में संलग्न हैं।

विज्ञान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और बाल साहित्य

हमें मालूम है कि प्रकृति और ब्रह्मांड को संचालित करने वाले मेकेनिज्म को समझने की युक्ति 'विज्ञान' है। दूसरे शब्दों में विज्ञान प्रकृति के रहस्यों और वास्तविकता को अनावृत्त करता है और उसकी व्याख्या करता है। वैज्ञानिक समुदाय शोध के बाद जिन नतीजों पर पहुँचते हैं, वे मनगढ़ंत या कृत्रिम नहीं होते, क्योंकि विज्ञान प्राकृतिक सत्य की वकालत करता है। तर्क, सत्यापन और प्रयोग इसके आधारभूत घटक होते हैं।

वहीं दूसरी तरफ विज्ञान, तकनीक व इनसे जुड़ी उपलब्धियों की जानकारी वैज्ञानिकों के साथ-साथ बच्चों को होना भी जरूरी है। बच्चे ज्ञान-विज्ञान के बारे में जानने के लिए सदैव जिज्ञासु होते हैं। इसी सहज जिज्ञासा को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान के अंतर्गत विज्ञान की भावना (वैज्ञानिक दृष्टिकोण) का विकास करना हर एक नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य सुनिश्चित किया गया है (अनुच्छेद 51A[h])। यहीं पर विज्ञान संचार की भूमिका सामने आती है। इसके मुख्य रूप से तीन व्यापक उद्देश्य होते हैं–

1. आम जन को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में नवीन जानकारी से अवगत कराना
2. आम जन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना और
3. समाज में व्याप्त अंधविश्वासों का निर्मूलन करना और लोगों को मानसिक रूप से सबल बनाकर जीवन में तर्कसंगत फैसले लेने के लिए प्रेरित करना।

जहाँ तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की बात है, यह सोचने, समझने और निर्णय करने का एक तर्कसंगत नजरिया होता है। कोई भी वैज्ञानिक एक नियत विधि या परिपाटी से होकर एक प्रमाणित

निष्कर्ष पर पहुँचता है। इसे विज्ञान विधि (method of science) कहते हैं। इसमें पाँच मुख्य चरण होते हैं—1. प्रेक्षण, 2. प्रश्न का जन्म, 3. संकल्पना, 4. प्रयोग और 5. विश्लेषण व निष्कर्ष।

हम अपने दैनिक जीवन में बिना वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग किए अनेक कार्य करते हैं, जो असंगत और नुकसानदायक होते हैं। कुछ उदाहरण देखिए। प्लास्टिक के कप में गर्म चाय या कोई अन्य पेय पदार्थ पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है और कमरे की दुर्गंध को दूर करने के लिए प्रयोग किए जाने वाले रूम फ्रेशनर और मॉस्किटो रिपेलेंट कैंसरकारक होते हैं। धूप से आकर हम तुरंत ठंडा पानी पी लेते हैं। इससे शरीर के तापमान का संतुलन बिगड़ जाता है। सब्जी और फल धोकर तुरंत उन्हें प्रयोग कर लेते हैं, जबकि उन्हें पकाने या खाने से पहले घंटा, आधा-घंटा पानी में रख देने से, उनके कीटनाशक रसायन पानी में घुल जाते हैं। इस तरह उनसे नुकसान का स्तर कम हो जाता है। ऐसी तमाम मामूली मगर जरूरी बातों की जानकारी और उसमें अपनी सूझ-बूझ लगाने से हमारा जीवन स्वस्थ और पर्यावरण सुरक्षित रहता है।

बच्चों के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित हर एक गूढ़ बात को जानना भले ही जरूरी न हो, लेकिन उसे विज्ञान की इतनी जानकारी होनी ही चाहिए कि वह उस जानकारी के प्रकाश में उचित निर्णय ले सके। यहाँ पर न्यूनतम विज्ञान और वैज्ञानिक साक्षरता की आवश्यकता सामने आती है। इस मायने में बाल साहित्य में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समावेश से या विज्ञानपरक बाल साहित्य के जरिए न केवल बच्चों में विज्ञान की जानकारी मिलती है, वैज्ञानिक अध्ययन-शोध की प्रेरणा मिलती है, बल्कि उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास भी होता है।

परंपरागत बनाम गतिविधि केंद्रित विज्ञान शिक्षा और बाल साहित्य

एकतरफा शिक्षा प्रक्रिया को समय के साथ अनुपयोगी माना जाने लगा है। वह शिक्षा जिसमें बच्चों को भी कक्षा या प्रयोगशाला में संवाद या प्रयोग का मौका दिया जाए, उसे ज्यादा उपयोगी और फलदायक पाया गया है। इसे चाइल्ड एंगेजिंग या चाइल्ड पार्टीसिपेटिंग युक्ति कहते हैं जिसमें दोतरफा संवाद होता है। परिणाम बताते हैं कि इस प्रकार की दोतरफा शिक्षा प्रक्रिया में बच्चे एकतरफा परंपरागत प्रक्रिया की तुलना में अधिक सीखते हैं। गतिविधि और हैंड्स ऑन को बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में सबसे उपयोगी पाया गया है। हाथों से काम करने और गतिविधियों को अंजाम देने से बच्चों के दिमाग सक्रिय हो जाते हैं तथा वे अधिक सीखते समझते हैं। यही मुख्य कारण है कि आजकल गतिविधि और हैंड्स ऑन को बच्चों के शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यापक तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (National Curriculum Framework) में भी गतिविधि केंद्रित पाठ्यक्रम पर बल दिया गया है। यही कारण है कि वर्तमान एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकों में गतिविधि और परियोजनाओं का समावेश देखने को मिलता है।

“परिणाम बताते हैं कि इस प्रकार की दोतरफा शिक्षा प्रक्रिया में बच्चे एकतरफा परंपरागत प्रक्रिया की तुलना में अधिक सीखते हैं। गतिविधि और हैंड्स ऑन को बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में सबसे उपयोगी पाया गया है। हाथों से काम करने और गतिविधियों को अंजाम देने से बच्चों के दिमाग सक्रिय हो जाते हैं तथा वे अधिक सीखते समझते हैं। यही मुख्य कारण है आजकल गतिविधि और हैंड्स ऑन को बच्चों के शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यापक तौर पर इस्तेमाल किया जा रहा है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा तैयार राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (National Curriculum Framework) में भी गतिविधि केंद्रित पाठ्यक्रम पर बल दिया गया है। यही कारण है कि वर्तमान एन.सी.ई.आर.टी. की पुस्तकों में गतिविधि और परियोजनाओं का समावेश देखने को मिलता है।”

बाल साहित्य अपने आप में नवाचार और प्रयोग का द्योतक होता है जिसमें गतिविधि एक अहम घटक होती है। ये साहित्य, शिक्षा पाठ्यक्रम की विस्तृत बाँह के समान होते हैं। राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, विज्ञान प्रसार, नेशनल बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग जैसे अनेक सरकारी प्रक्रम और गैर सरकारी एजेंसियाँ गतिविधि केंद्रित बाल साहित्य के निर्माण और व्यापक प्रसार में अपनी अहम भूमिका निभा रही हैं।

तर्कशील व्यक्ति : सशक्त राष्ट्र

वैज्ञानिक दृष्टिकोण युक्त और तर्कशील व्यक्ति, तर्कशील समाज तथा सशक्त राष्ट्र का निर्माण करते हैं। ऐसा तब ही संभव है जब बच्चों और युवाओं को ज्ञान विज्ञान की समस्त धाराओं से जोड़ा जाए; साथ ही गतिविधि आधारित साहित्य के नवाचार किए जाएँ। केवल शिक्षित नागरिकों से कोई देश सशक्त नहीं बनता। देश के विकास के लिए नागरिकों का तर्कशील और संवेदनशील होना भी उतना ही जरूरी है। इसके साथ ही यह भी सच है कि गतिविधि और करके सीखो की मूल भावना से सिंचित बाल साहित्य की उत्प्रेरणा से ऐसे नागरिकों के विकास की गुंजाइश बढ़ जाती है।



जूतों का साथ



रेनू सैनी

संप्रति : हिंदी कमेंट्रेटर एवं एंकर, देश-विदेश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तीन हजार से अधिक रचनाओं का प्रकाशन।

प्रकाशन : दिशा देती कथाएँ, बचपन का सफर, बचपन मुस्काया जब इन्हें सुनाया, महात्मा गाँधी के प्रेरक प्रसंग, संत कथाएँ मार्ग दिखाएँ, कलाम को सलाम, सक्सेस गीता-सफल जीवन के 125 मंत्र, जीवनधारा, डायमंड लाइफ, मोदी सक्सेस गाथा, दिल्ली चलो आदि।

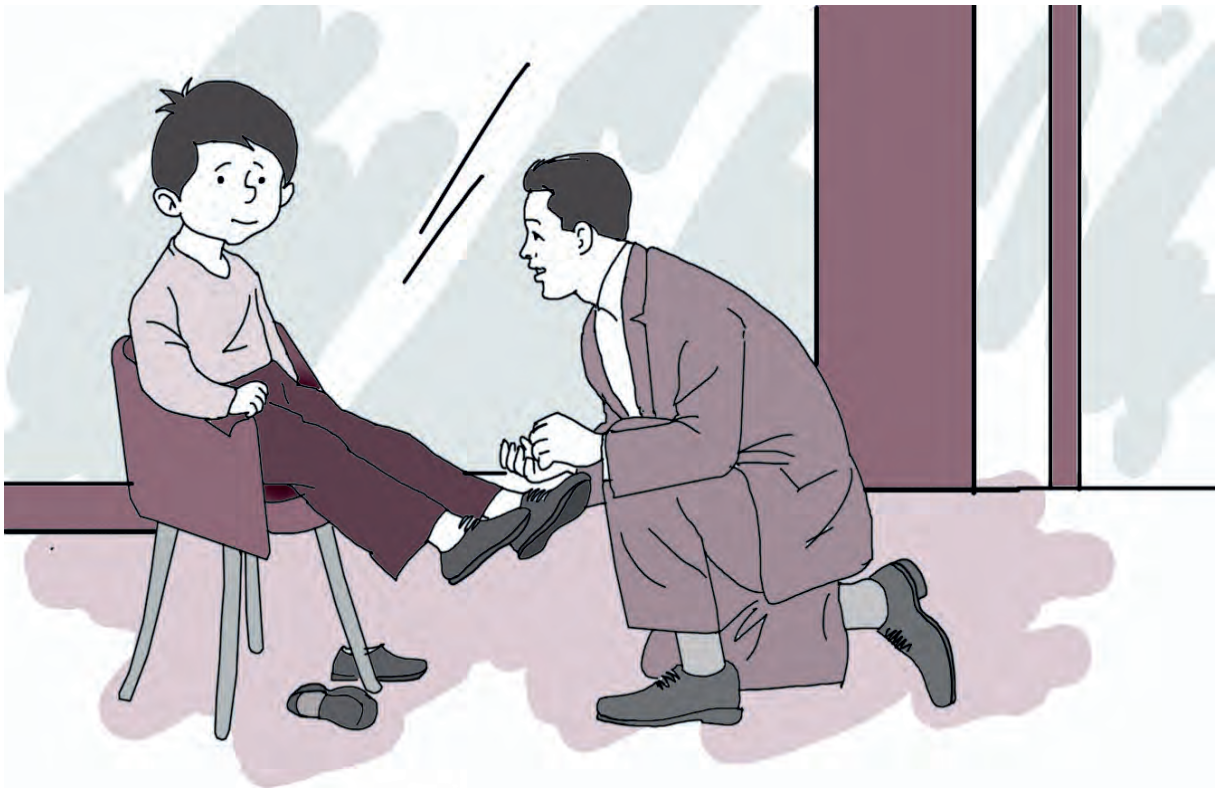
पुरस्कार : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम मेमोरियल अवॉर्ड तथा बाल साहित्य सम्मान से सम्मानित।

ई-मेल : saini.renu830@gmail.com

छह साल का गप्पू अपनी माँ रामेश्वरी का इकलौता बेटा था। रामेश्वरी घरों में काम करती थी और अपना व गप्पू का पेट भरती थी। रामेश्वरी कभी भी भरपेट भोजन नहीं जुटा पाती थी। वह खुद आधा खाती थी और गप्पू का पेट भरने की कोशिश करती थी। गप्पू अपने नाम के अनुसार गोल-मटोल था। रामेश्वरी उसे खूब पढ़ाना चाहती थी। इसलिए उसने उसका नाम सरकारी स्कूल में लिखवा दिया था। सरकारी स्कूल में विद्यार्थियों को कॉपी-किताबों के साथ ही खाना भी निःशुल्क मिलता था। इसलिए गप्पू स्कूल में खुश होकर जाता था। उसके स्कूल के सामने एक जूतों का बहुत बड़ा शोरूम था। जब वह स्कूल जाता था तो शोरूम बंद रहता था लेकिन स्कूल से लौटते समय शोरूम खुला रहता था और उसमें तरह-तरह के जूते नजर आते थे। गप्पू को बाहर से सुंदर-सुंदर जूतों को निहारना बहुत अच्छा लगता था। अब वह नौंवीं कक्षा में आ गया था। पढ़ने में वह बहुत होशियार था। स्कूल के शिक्षक भी उसे बहुत पसंद करते थे।

एक दिन रामेश्वरी काम पर से घर लौटी तो उसे अपने शरीर में पीड़ा महसूस हुई। वह बिस्तर पर लेटी रही। गप्पू जब स्कूल से घर लौटा तो माँ को लेटे हुए देखकर बोला, 'माँ क्या हुआ? तुम ऐसे क्यों लेटी हो?' माँ को छूने पर उसने पाया कि वह ठंड से काँप रही है। गप्पू और रामेश्वरी का एक दूसरे को छोड़कर कोई न था। चौदह वर्षीय गप्पू लोगों की सहायता से रामेश्वरी को सरकारी अस्पताल लेकर गया। समय पर अस्पताल ले जाने के कारण रामेश्वरी की जान तो बच गई लेकिन शरीर की सारी ताकत निचुड़ गई। अब वह काम पर नहीं जा पाती थी। अचानक ही गप्पू पर पूरे घर की जिम्मेदारी आ गई। घर चलाने के लिए उसने सुबह-सुबह अखबार बेचना शुरू कर दिया। स्कूल से आने के बाद वह सब्जी बेचता। इस तरह किसी तरह दो वक्त की रोटी चल रही थी।

एक दिन गप्पू स्कूल से आते समय सड़क पार कर रहा था। तभी एक गाड़ी तेजी से उसकी ओर बढ़ी। गाड़ी से दूर होने के चक्कर में गप्पू जल्दी से पीछे को हुआ और अपना संतुलन संभाल नहीं पाया। उसका पैर



एक नुकीले पत्थर से टकराया और उसके जूते का खोल बुरी तरह फट गया। नुकीले पत्थर के कारण पैर में चोट भी लग गई। यह देखकर गाड़ी के मालिक ने तुरंत गाड़ी रोकी। वह एक नेक व्यक्ति थे। उनका बहुत बड़ा बिजनेस था। धनीराम उसे अस्पताल ले जाने लगे तो गप्पू बोला, 'साहब, मैं टिटनेस का टीका लगवा लूँगा। आपने जान बूझकर ऐसा नहीं किया। बस मेरे जूते बुरी तरह फट गए हैं। इन एक जोड़ी जूतों के कारण मैं सुबह से शाम तक भाग-भागकर अपने काम पूरे करता था। अब मुझे जूते खरीदने के लिए अधिक मेहनत करनी पड़ेगी और स्कूल घर की चप्पलों में ही जाना होगा। मुझे चप्पल पहन कर काम करने की आदत नहीं है। मैं जूतों को पहनकर दौड़ कर सारे काम कर लेता था।' इस पर धनीराम मुस्कराते हुए बोले, 'नहीं बेटा, तुम स्कूल जूते पहनकर ही जाओगे। गलती मेरी है। मुझे ही सुधारना चाहिए। इसके बाद वह उसे अपने साथ जूतों के उस शोरूम में ले गए, जहाँ जाने के लिए गप्पू सपने देखता रहता था। जब उसने पहली बार शोरूम में प्रवेश किया तो रोमाँच से उसका पूरा शरीर काँप उठा। अभी तक वह शोरूम के जूतों को दूर से निहारता था। इतने सालों में पहली बार आज उसे वहाँ जाकर जूते खरीदने का अवसर मिल रहा था।

धनीराम वहाँ जाकर बोला, 'गप्पू के साइज के जूते दिखाइए।' अनेक सेल्समैन नए-नए डिजाइन के जूते लाकर गप्पू को दिखाने लगे। गप्पू को अपने जीवन में इतनी खुशी और आनंद आज तक प्राप्त नहीं हुआ था, जितना आज तरह-तरह के जूते पैर में डालने पर हो रहा था। गप्पू को जो जूते पसंद आए, वे पूरे सत्रह सौ रुपए के थे। धनीराम ने गप्पू को जूते दिलवाए। गप्पू ने जूते ले तो लिए पर अंदर से उसका मन बेचैन था। धनीराम बोले, 'बेटा, अब तो तुम्हें खुश होना चाहिए। पुराने जूतों के स्थान पर तुम्हारे पास नए जूते आ गए हैं।' गप्पू बोला, 'सर, मैं अभी इन जूतों का हकदार नहीं हूँ। आपने मुझे जान-बूझकर टक्कर नहीं मारी, इसलिए मुझे इन्हें लेते हुए हिचक हो रही है।' धनीराम बोले, 'बेटा, इन जूतों पर तुम्हारा ही हक है। मैं चाहता हूँ कि इन जूतों को पहनकर, तुम अपनी माँ की सारी तकलीफों को जूतों तले मसल दो और जीवन में कामयाबी हासिल करो। तुम्हें जीवन में आगे बढ़ना है, अपनी माँ के सपनों को पूरा करना है। तुम्हारे पैरों में जितने मजबूत जूते होंगे तुम उतनी ही मजबूती से जीवन में पैर जमाने में सफल रहोगे।' धनीराम की बातें सुनकर गप्पू को तसल्ली हुई। उसने जूतों का पैकेट लिया और अपने घर आ गया।

रामेश्वरी धीरे-धीरे गप्पू के लिए खाना बना रही थी। घर में घुसते ही गप्पू बोला, 'माँ, आज तो मेरा पेट खुशी से ही भर गया।

ये देखो एक जोड़ी नए जूते।' जूते देखकर रामेश्वरी हैरानी से गप्पू की ओर देखने लगी। गप्पू ने सारी बात रामेश्वरी को बताई। रामेश्वरी बोली, 'बेटा, तुम यह मत सोचना कि ये जूते तुम्हें उपहार में या मुफ्त मिले हैं। तुम हर पल यह सोचना कि ये जूते तुम्हें दिन-रात संघर्ष और मेहनत के परिणाम के रूप में पहले ही मिल गए हैं। उस मेहनत और संघर्ष को तुम्हें पूरे आत्मविश्वास और मन के साथ करना है।' गप्पू माँ की इस बात को हमेशा ध्यान रखता। माँ अब बूढ़ी हो रही थी। गप्पू सुबह पाँच बजे जो उठता तो उसकी दिनचर्या रात के ग्यारह बजे ही खत्म होती। वह सुबह अखबार बेचने निकल जाता, फिर स्कूल चल देता। स्कूल के बाद अपनी सब्जी की दुकान पर बैठ जाता, वहीं वह पढ़ता और सारे हिसाब किताब करता। अब उसने धीरे-धीरे सब्जी के साथ स्टेशनरी व पत्र-पत्रिकाएँ भी रखनी शुरू कर दी थीं। वह स्वयं भी पत्रिकाओं को पढ़ता रहता। उसकी मेहनत धीरे-धीरे रंग ला रही थी। धनीराम के द्वारा दिलाए गए जूते भी गप्पू का पूरा साथ निभा रहे थे। आखिर एक दिन ऐसा भी आया कि वे जूते बुरी तरह फट गए। फिर भी गप्पू ने उन जूतों को नहीं फेंका बल्कि उन्हें एक कपड़े में लपेट कर घर के कोने में रख दिया। गप्पू अब बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने लगा था। स्वयं वह गणित में बी.एस.सी कर रहा था। गप्पू का गणित बहुत अच्छा था। अनेक प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में भी वह लगा हुआ था। अब उसके घर की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी हो गई थी। अच्छी फल सब्जी व पौष्टिक भोजन प्राप्त होने के कारण रामेश्वरी की हालत में भी सुधार था। गप्पू ने बी.एस.सी पास करते ही आई.ए.एस की परीक्षा का आवेदन फॉर्म भर दिया। वह पढ़ने में जुट गया।

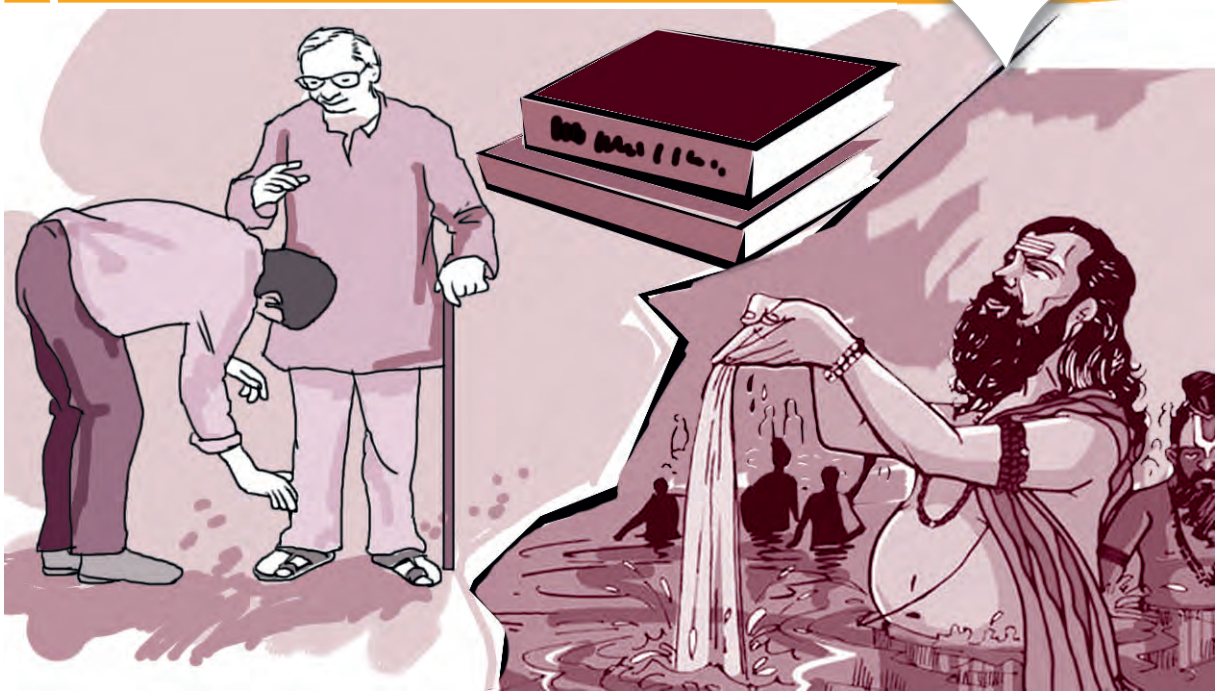
उसने परीक्षा दी। लिखित परीक्षा में वह पास हो गया था, अब साक्षात्कार की परीक्षा थी, साक्षात्कार के लिए भी वह दिन-रात मेहनत कर रहा था। साक्षात्कार के समय गप्पू से बहुत सारे प्रश्न किए गए। उनमें एक प्रश्न यह था कि उसे अपनी कौन सी वस्तु सबसे प्रिय है। इस पर उसने बताया कि उसे अपने वे जूते सबसे प्रिय हैं जो धनीराम ने दिलवाए थे,

"आई.ए.एस बनते ही गप्पू की आर्थिक स्थिति का कायापलट हो गया। उसे बड़ा घर मिला। घर में सब सामान नया था, उन्होंने अपना पुराना सामान जरूरतमंदों को दे दिया था। जब गप्पू ने माँ के साथ नए घर में प्रवेश किया तो रामेश्वरी ने देखा कि उसके हाथों में कुछ था। रामेश्वरी बोली, 'गप्पू तुम्हारे हाथों में क्या है?' गप्पू मुस्करा कर बोला, 'माँ इसमें मेरे सुख दुख के साथी हैं।'"



जूते फटने के बाद भी उसे अपने वे जूते प्रिय थे, क्योंकि वे जूते उसके सुख-दुख और संघर्ष के सच्चे साथी थे। इस प्रकार उसका साक्षात्कार भी हो गया। अब परिणाम की प्रतीक्षा थी।

गप्पू पूरे भारत में आई.ए.एस की परीक्षा में सातवें स्थान पर रहा था। अब गप्पू आई.ए.एस था। आई.ए.एस बनते ही गप्पू की आर्थिक स्थिति का कायापलट हो गया। उसे बड़ा घर मिला। घर में सब सामान नया था, उन्होंने अपना पुराना सामान जरूरतमंदों को दे दिया था। जब गप्पू ने माँ के साथ नए घर में प्रवेश किया तो रामेश्वरी ने देखा कि उसके हाथों में कुछ था। रामेश्वरी बोली, 'गप्पू तुम्हारे हाथों में क्या है?' गप्पू मुस्करा कर बोला, 'माँ इसमें मेरे सुख दुख के साथी हैं।' माँ उत्सुकता से बोली, 'अच्छा मुझे भी तो दिखा, तेरे वे सुख दुख के साथी कौन हैं?' उसने गप्पू के हाथ से पैकेट लिया। उसे उत्सुकता से खोला तो पाया कि उसमें गप्पू के एक जोड़ी वही फटे जूते थे जो धनीराम ने उसे बरसों पहले दिलवाए थे।' उन जूतों को देखकर गप्पू की आँखें नम हो गईं। वह बोला, 'माँ मैं इन जूतों को हमेशा अपने साथ रखूँगा, क्योंकि मेरी सफलता में इन जूतों ने प्रमुख भूमिका निभाई है। देखने वालों के लिए ये मात्र फटे जूते होंगे लेकिन मेरे लिए सचमुच ये मेरे मार्गदर्शक और सच्चे साथी हैं। दिन-रात इन्हीं जूतों ने मुझे मेहनत करनी सिखाई, मेरे आत्मविश्वास को बढ़ाया और मुझे यह भी सिखाया कि जिस तरह धनीराम ने मेरी मदद को हाथ बढ़ाए थे, उसी तरह मुझे भी अन्य जरूरतमंदों की तरफ हाथ बढ़ाने चाहिए।' माँ गप्पू की बात सुनकर मुस्करा दी। अब उसकी आँखों में भी नमी थी। माँ ने देखा कि गप्पू की आँख से एक आँसू निकल कर जूते पर गिर गया था जिससे जूता निखर गया था।



भूत-प्रेत और परीकथाओं की प्रासंगिकता



डॉ. शकुन्तला कालरा

जन्म : 2 मार्च, 1946, बक्खर, पश्चिम पाकिस्तान।

शिक्षा : एम.ए., एम. लिट्., पी-एच.डी., डी.लिट्., ज्योतिष प्रवीण, ज्योतिष विशारद, ज्योतिष शोधकार्य, पंजाबी भाषा में डिप्लोमा, पत्रकारिता में डिप्लोमा।

संप्रति : मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय से ऐसोसिएट प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त।

प्रकाशन : 39 पुस्तकें प्रकाशित।

पुरस्कार : भारतीय बालकल्याण संस्थान कानपुर, अंतर्राष्ट्रीय तुलसी-संगम सम्मान, बालकन जी बारी, अंतर्राष्ट्रीय संस्था विशेष सम्मान, संसदीय हिंदी भाषा परिषद्, राष्ट्रभाषा-गौरव सम्मान, हिंदी अकादमी व दिल्ली सरकार का बाल एवं किशोर साहित्य पुरस्कार आदि अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

संपर्क : skalra50@gmail.com

20वीं शताब्दी बाल साहित्य में एक विश्वव्यापी क्रांति लेकर आई। बदलते युग, समाज और जीवन के अनुरूप बाल साहित्य के प्रतिमान भी बदले। परिणामतः हमारे यहाँ भी बाल साहित्य-लेखन पहले जैसा नहीं रहा। प्राचीन साहित्य की अपेक्षा आधुनिक जगत् से परिचित कराने वाला साहित्य दिया जाने लगा। आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने प्रगति और प्रमुखता प्राप्त कर ली तो परिणामतः बच्चों का परिचय भी नई दुनिया, नए परिवेश से कराने की आवश्यकता के महत्त्व को स्वीकार किया जाने लगा। बाल साहित्य के आदिरूप का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भारतीय जनता अपने बच्चों को मुस्लिम-संस्कृति, उर्दू-फारसी की कथाओं तथा अंग्रेजों के आने के बाद विदेशी-संस्कृति के प्रभाव से बचाने के उद्देश्य से पुराण, उपनिषद् तथा अन्य प्राचीन आख्यानकों की कहानियों के आधार पर नीतिपरक साहित्य लिखा जा रहा था, जिसका उद्देश्य था भारतीय संस्कृति और उसके संस्कार देकर उन पर स्वस्थ प्रभाव डालना। बाल साहित्य के प्रति बच्चों का आकर्षण ज्ञानार्जन और मनोरंजन के साथ जिज्ञासा शांत करने के सशक्त माध्यम के रूप में रहा है। बाल साहित्य ज्ञान के असीम भंडार बच्चों के सामने रख देता है। इसके विषय बच्चों की रुचि एवं प्रवृत्ति के अनुकूल होते हैं। यही कारण है कि प्राचीन बाल साहित्य में भूत-प्रेत, राक्षस तथा परीकथाओं को स्थान मिलता रहा है। आज यह मुद्दा बहस का मुद्दा बन चुका है। विद्वानों के एक वर्ग के अनुसार परीकथाओं में बच्चों को आनंद भी मिलता है। उनकी कल्पनाशक्ति को जाग्रत करने, उसे उर्वर बनाने में परीकथाओं का विशेष योगदान रहा है।

बाल साहित्य का उद्भव लोकसाहित्य से हुआ जिसमें परियों की कल्पना बहुत पुरानी है। हर देश में अपनी-अपनी अलग

मान्यताओं के साथ परीकथाएँ हैं। दयालुता, करुणा तथा हर कठिन स्थिति में बच्चों की सहायता करना उसके सार्वदेशिक गुण हैं। भूत-प्रेत, राक्षस तथा परीकथाओं का अपना स्थान रहा है। युग बदला, उसके तेवर बदले और उसी के अनुरूप इन्हें अप्रासांगिक मानकर बाल साहित्य की सीमा से बाहर निकालने की मुहिम छिड़ गई। विद्वानों का यह वर्ग बच्चों को इस प्रकार का साहित्य देने के पक्ष में नहीं है। उनका मानना है कि ऐसा साहित्य बच्चों को रुढ़िवादी और अंधविश्वासी बनाता है।



हिंदी बाल साहित्य की पृष्ठभूमि बतलाती है कि 20वीं शताब्दी के पहले दशक में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से बच्चों के लिए पौराणिक और धार्मिक कहानियाँ लिखी गईं, जिनमें नीति तत्त्व की प्रधानता थी। तीसरे दशक में प्रेमचंद ने नीतिकथाओं की उपदेशवृत्ति से मुक्त होकर कहानियाँ लिखीं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद पाँचवें दशक तक आते-आते तो बाल साहित्य में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया। यह परिवर्तन आमूल तो नहीं था पर क्रांतिकारी था जिसमें बालरुचि और बालमनोवृत्ति की प्रधानता थी। भारतीय तथा पाश्चात्य बाल साहित्य का स्वरूप आधुनिक हो गया। अब कहानियाँ बच्चों की रुचि के अनुकूल तथा बालजगत् की समस्याओं को केंद्र में रखते हुए मनोवैज्ञानिक ढंग से लिखी जाने लगीं। केवल परीलोक की सैर कराने वाली कहानियों तक ही बाल साहित्य सीमित नहीं रहा।

बाल साहित्य तो वही श्रेष्ठ माना गया है जो बच्चों के व्यक्तित्व का समुचित विकास करे। भूत-प्रेत, राक्षसों की कहानियाँ बच्चों में भय, अंधविश्वास को जन्म देती हैं और परीकथाएँ वायवी लोक-कथाओं पर आधारित होने के कारण उन्हें जीवन के यथार्थ से दूर ले जाती हैं। डॉ. देवसरे के मत में—"आज के युग में दुनिया के साथ साहित्य के रूप में भी परिवर्तन हो रहे हैं। बाल साहित्य में जंगली राक्षस, राजा-रानी, परियों की कल्पना भरी उड़ान का अब महत्त्व नहीं रह गया है। .....आज रॉकेट और अंतरिक्ष का युग है। अगर हम अपने बच्चों को झूठे और काल्पनिक लोक में घुमाते हैं तो बड़ा होकर निश्चय ही वह निराश होगा। .....आज का युग विज्ञान के धरातल पर खड़ा है। वह सत्य और प्रमाणों को लेकर चलता है। इसलिए निर्मूल बातों का कोई महत्त्व नहीं रहा।" इस प्रकार आधुनिक रचनाकारों की दृष्टि में बच्चों के लिए वही साहित्य ही श्रेयस्कर है जो बालजीवन से जुड़ा है, जिसमें बच्चों की अपनी दुनिया है। जहाँ उनके रंगीन सपने हैं, उनकी भाव-भंगिमाएँ हैं। उनके आँसू-मुस्कान हैं। सुख-दुःख के चित्र हैं। किसी वायवी जीवन को बाल साहित्य का आधार नहीं बनाया जा सकता। परीकथाओं का सुख-दुःखात्मक भावजगत् हमारे जीवन से कहीं भी सादृश्य नहीं रखता। वहाँ यथार्थ जगत् नहीं वरन् अतिरंजित कल्पना-जगत् होता है जिसका कोई आधार नहीं होता। वह जीवन के प्रति रूमानियत से भरा होता है। इसी कारण जब बच्चे का सामना ठोस यथार्थ से होता है तो वह पलायन करने लगता है। संभवतः इसीलिए शिक्षाशास्त्री मेरिया मांटेसरी परीकथाओं से बच्चों को पूरी तरह से बचाने की राय देती हैं, क्योंकि इससे एक प्रकार की भीरुता का भाव सदा के लिए उनके मन में घर कर लेता है। बाल साहित्य के प्रसिद्ध अमरीकी लेखक लूसी स्प्रेग माइकल लिखते हैं—"अब अध्यापकों और अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों को

काल्पनिक और परियों की कथाएँ न सुनाएँ इससे उन पर कुप्रभाव पड़ते हैं।" अतः ऐसा साहित्य नितांत अमनोवैज्ञानिक और अप्रासांगिक है। स्वतंत्रता के बाद बच्चों के लिए विज्ञान संबंधी रचनाएँ ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने वाले लेखन को महत्त्व मिलने लगा। आज वैज्ञानिक युग के अनुरूप मानसिकता तैयार करना भी एक अनिवार्यता माना जाने लगा है। पुरानी परंपराओं और अंधविश्वासों को तोड़ने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है और इसी तरह भूत-प्रेतों की कहानियों को भी बच्चों के लिए अग्राह्य मानते हुए इसे सर्वथा त्याज्य माना है। हिंदी के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं साहित्यकार डॉ. रामकुमार की दृष्टि में "बाल साहित्य बच्चों में सहज सात्विक उत्सुकता उत्पन्न करने वाला होना चाहिए। भूत-प्रेतों की कहानियाँ स्वस्थ बाल साहित्य का अंग नहीं है।"

"बालसाहित्यकार को इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि बच्चों को जादू-टोना या भूत-प्रेत से संबंधित साहित्य न दे, क्योंकि बालमन अत्यंत कोमल और सहज विश्वासी होता है। वह ऐसा साहित्य पढ़कर डरने लगता है। कहीं भी अकेले जाने में घबराने लगता है। उसमें साहस और हिम्मत समाप्त हो जाती है। उसमें वैज्ञानिक सोच भी नहीं पनप पाती। जादू-टोने में विश्वास के कारण वह हर असंभव कार्य को इससे संभव कर लेना चाहता है। अचानक जादू द्वारा कुछ भी पा जाने के अहसास से वह परिश्रम के महत्त्व को स्वीकार नहीं कर पाता।"

अमरीकी बाल साहित्य में जीवन के भावनात्मक पक्ष की अपेक्षा व्यावहारिक पक्ष पर ध्यान दिया जाता है। यही कारण है कि वहाँ काल्पनिक और जादूभरी कहानियों के लिए कोई स्थान नहीं है। ये विषय कुप्रभावी हैं और इसी कारण सर्वथा त्याज्य भी। जीवन के मूल्यों को पहचानने और सही दिशा खोजने में ऐसी कहानियाँ असफल ही रही हैं। ये बच्चों में उलझन पैदा करती हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों की समस्याओं को, उनकी मनोवृत्ति को समझते हुए उनका युगानुरूप हल प्रस्तुत करना। उन्हें जादूभरी घाटियों में घुमाते रहना अथवा परीलोक की सैर कराना किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। उन्हें यथार्थ के धरातल पर खड़ा होकर, विवेक-संपन्न दृष्टि के लिए प्रेरित करने की आवश्यकता है। जादू की कहानियाँ बालक को थोड़ी देर के लिए चमत्कृत तो कर सकती हैं किंतु उसे सत्य से दूर भुलावे में जाकर छोड़ देती हैं, क्योंकि उसकी बुद्धि रहस्यमयी और विस्मयकारी शक्तियों द्वारा संचालित होने लगती है। आज का बच्चा सजग, कुशल और चतुर है। उस पर आप अपनी मान्यताएँ विशेष रूप से अंधविश्वास, अलौकिक तत्व थोपकर उसे दिग्भ्रमित नहीं कर सकते।

यह बात सर्वमान्य है कि आज का बालक बौद्धिक दृष्टि से पूर्ण विकसित है। वह तार्किक है। उसे आप कपोल-कल्पित कहानियों से बहला नहीं सकते। उसकी सोच विश्लेषणवादी हैं। वह आपकी पुरानी रूढ़िबद्ध विचारधाराओं को नकार देगा। आप द्वारा स्थापित किसी भी मान्यता को तब तक ग्रहण नहीं करेगा जब तक वह उसे तर्क की कसौटी पर नहीं कस लेगा। वह हर कहानी को उसके तथ्य, घटना को स्वयं परखकर ही ग्रहण करता है। उसे वह साहित्य कतई ग्राह्य और स्वीकार्य नहीं जो उसे किसी भूल-भूलैया में डाले अथवा जिनका कोई अस्तित्व ही न हो। डॉ. देवसरे की दृष्टि में बालक निर्मूल, कल्पनाभरी कहानियों की सत्यता पर प्रश्नचिह्न लगा देता है—"यही कारण है कि अब परीकथाएँ, राक्षसों और भूतों की कहानियाँ झूठ अधिक सिद्ध होती जा रही हैं। बच्चे इन कहानियों को सुनकर परी से मिलना चाहते हैं, राक्षस को देखना और उसे मारने का साहसपूर्ण प्रयास करने की उनमें उत्कंठा होती है, लेकिन अंत में उन्हें निराशा होती है जब वे इन निर्मूल कल्पना-भरी कहानियों की सत्यता की जानकारी प्राप्त करते हैं। इसीलिए वे उन सभी मान्यताओं पर अविश्वास प्रकट करते हुए आकाश में उड़नेवाले वायुयान अथवा राकेट को देखकर चंद्रलोक या मंगलग्रह में पहुँचने की कल्पना में अधिक विश्वास करते हैं।"

अतः कहा जा सकता है कि हिंदी बाल साहित्य आज कथ्य और शिल्प के पुराने खाँचे को तोड़कर नए मार्गों का संधान करने की ओर अग्रसर है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक विकास के कारण उसका स्वरूप परिवर्तित हुआ है। आज साहित्य युगानुरूप बालमन की अनुभूतियों के निकट आ गया है। वह बालमनोविज्ञान को प्रतिबिंबित करता है। ऐसा साहित्य ही बच्चे रस लेकर पढ़ते हैं और बार-बार पढ़ते हैं। अतः बाल साहित्यकार को इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि बच्चों को जादू-टोना या भूत-प्रेत से संबंधित साहित्य न दे, क्योंकि बालमन अत्यंत कोमल और सहज विश्वासी होता है। वह ऐसा साहित्य पढ़कर डरने लगता है। कहीं भी अकेले जाने में घबराने लगता है। उसमें साहस और हिम्मत समाप्त हो जाती है। उसमें वैज्ञानिक सोच भी नहीं पनप पाती। जादू-टोने में विश्वास के कारण वह हर असंभव कार्य को इससे संभव कर लेना चाहता है। अचानक जादू द्वारा कुछ भी पा जाने के अहसास से वह परिश्रम के महत्त्व को स्वीकार नहीं कर पाता। यही बात परीकथाओं के विषय में भी कही जा सकती हैं। परीकथाएँ एक ओर जहाँ बच्चों की कल्पनाशीलता को उभारती हैं वहाँ यह खतरा भी रहता है कि बच्चा कुछ ज्यादा ही कल्पनाशील हो सकता है और सदा हवाई किले ही बनाता न रह जाए। हर प्रकार के साहित्य का अंतिम लक्ष्य बच्चों का बौद्धिक एवं आत्मिक विकास है और यह विकास वैज्ञानिक ढंग से होना चाहिए। वे आज के युग में जीते हैं अतः उन्हें साहित्य भी युगानुरूप उपलब्ध होना चाहिए।

कोई तो मदद करो



क्या वह पागल था? पता नहीं, पर आस पास खड़े लोग तो ऐसा ही कह रहे थे। क्या इसीलिए उसे रोता देख लोग उसकी खिल्ली उड़ा रहे थे। आखिर सच क्या था?

सड़क पर जाम लगा था। ग्लोरी स्कूल की बस को रुकना पड़ा। बस से आगे कई कारें और स्कूटर हॉर्न बजा रहे थे। सड़क के बीचोबीच कई लोग खड़े थे। न जाने क्यों वे हँस रहे थे लेकिन हँसी के बीच किसी के रोने की आवाज भी सुनाई दे रही थी। आखिर मामला क्या था?

अजय और शिवम बस से उतर कर वहाँ जमा लोगों के बीच जा पहुँचे। उन्होंने देखा भीड़ के बीच एक बूढ़ा सड़क पर बैठा था। वह रो रहा था लेकिन लोग हँस रहे थे। उसके हाथ में एक डंडा था, जिस पर लगे पोस्टर पर बड़े-बड़े शब्दों में लिखा था—'मेरा बेटा खो गया है। उसे खोजने में मदद करो।' तभी एक सिपाही वहाँ आ पहुँचा। उसने बूढ़े को पकड़ कर उठाया और फुटपाथ पर बैठा दिया फिर ट्रेफिक को संचालित करने लगा। अजय और शिवम भी स्कूल बस में जा बैठे। उन्होंने देखा कई लोगों ने उस बूढ़े को फिर से घेर लिया था। तभी एक लड़का दौड़ता हुआ आया और बूढ़े के हाथ से पोस्टर छीन कर भाग गया। इसके बाद क्या हुआ अजय और शिवम नहीं देख पाए, क्योंकि बस आगे बढ़ गई थी।

शिवम ने अजय से कहा—"पता नहीं वह कौन था जो बूढ़े बाबा का पोस्टर लेकर भाग गया। पता नहीं अब वह अपने खोये हुए बेटे को कैसे खोजेंगे!"

"पता नहीं उनका बेटा कैसे खो गया।"—अजय ने कहा। शिवम ने जवाब नहीं दिया। वह कुछ सोच रहा था। घर पहुँच कर उसने अपनी माँ सुषमा से पोस्टर वाले बूढ़े बाबा के बारे में बताया तो वह मुस्करा कर बोलीं—"वही बूढ़ा जिसका बेटा खो गया है, जो सड़क के मोड़ पर फल बेचने वालों के पास खड़ा दिखाई देता है।"

"तो आप जानती हैं उसके बारे में—पर कैसे?"

1

"मैं तुम्हारे पापा के साथ वहाँ फल-फ्रूट लेने जाती रहती हूँ। बूढ़े को पोस्टर लिए हुए मैंने कई बार देखा है। लोगों को उन्हें पागल-सिरफिरा कहते भी सुना है। मेरे पूछने पर एक ने बताया कि बूढ़े का नाम श्यामू है। वह भी पहले वहीं फल बेचा करता था। साथ में उसका बेटा चीतल भी खड़ा रहता था, पर वह शरारती था। वह पिता की काम में जरा भी मदद नहीं करता था। एक दिन मैं वहाँ गई तो देखा श्यामू का ठेला उल्टा पड़ा है और



देवेंद्र कुमार

जन्म : 1940, दिल्ली

संप्रति : स्वतंत्र लेखक। बच्चों और बड़ों के लिए निरंतर लेखन। 50 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

अनेक राष्ट्रीय पुरस्कार। विश्व साहित्य की लगभग 300 उत्तम कृतियों का सार संक्षेप। 27 वर्षों तक बच्चों की लोकप्रिय पत्रिका नंदन से जुड़े रहे।

संपर्क : 9910140071

सारे फल सड़क पर फैले हुए हैं। श्यामू एक तरफ सिर थामे बैठा था।

"क्या हुआ था?"

लोगों ने बताया—"एक लड़की गुब्बारे लेकर माँ के साथ जा रही थी। चीतल उसके गुब्बारे छीन कर भाग गया। लड़की रोती हुई उसके पीछे दौड़ी तो गिर कर चोट खा गई। इस पर श्यामू ने उसे पीट दिया। गुस्से में चीतल ने फलों का ठेला उलट दिया और भाग गया। यह कई महीने पहले की बात है। सुना है तभी से चीतल घर नहीं लौटा है। श्यामू और उसकी पत्नी परेशान घूम रहे हैं। सब श्यामू को दोष दे रहे हैं कि उसे चीतल



को पीटना नहीं चाहिए था। चीतल के न लौटने से जैसे श्यामू पागल सा हो गया है। सबसे पूछता फिरता है—चीतल कहाँ है? मैं उसका कसूरवार हूँ।

"हाँ मैंने भी देखा था कि वह हाथ में पोस्टर लिए सड़क पर बैठा था। वह रो रहा था और लोग हँस रहे थे।"—शिवम ने माँ से कहा। फिर एक बड़ी ड्राइंग शीट लेकर मोटे पेन से लिखने लगा—

माँ ने पूछा तो उसने कहा—"सुबह एक लड़का चीतल के पिता के हाथ से पोस्टर छीन कर भाग गया, इसीलिए मैंने नया पोस्टर तैयार किया है। सोचता हूँ जाकर उन्हें दे दूँ।" माँ ने कहा—"मुझे बजार से कुछ सामान लाना है, मैं भी चलती हूँ।"

सुषमा और शिवम बाजार पहुँचे तो श्यामू लोगों के बीच खड़ा दिखाई दिया। वह तेज स्वर में कुछ कह रहा था। शिवम ने उससे कहा—"बाबा, कोई आपका पोस्टर छीन कर ले गया था, मैंने नया पोस्टर बना दिया है।" और डंडे पर लगा पोस्टर उसे थमा दिया।

"बच्चे, अब इसकी कोई जरूरत नहीं है, मेरा चीतल लौट आया है। चलो मेरे साथ, उससे मिलो।"—कह कर श्यामू एक तरफ चल दिया। शिवम ने देखा, कुछ आगे फुटपाथ पर एक लड़का लेटा था गर्दन तक चादर ओढ़े हुए। उसकी आँखें बंद थीं। पास में बैठी एक औरत उसके माथे पर गीली पट्टी रख रही थी। साथ ही आँसू भी पोंछती जा रही थी। सुषमा ने पूछा—"अम्मा, चीतल कैसा है, यह कहाँ चला गया था?"

"यह तो मेरा चीतल नहीं है।"

"तो फिर यह कौन है?"

2

चीतल की माँ ने आँसू पोंछते हुए कहा—"क्या पता चीतल के बापू किसे उठा लाए हैं! मैंने तो साफ कह दिया था कि मेरे घर में चीतल के अलावा दूसरा कोई नहीं रह सकता। तब गुस्से में इसे लेकर यहाँ चले आए। कहा कि जहाँ उनका चीतल नहीं रह सकता वहाँ वह भी नहीं रहेंगे। फिर मुझे पता चला कि यह बच्चा बुखार में फुटपाथ पर लेटा है। आखिर मुझे देख भाल के लिए आना ही पड़ा।"

"तो चीतल का कुछ पता चला?"

"पता नहीं मेरा बेटा कहाँ चला गया।"

श्यामू इस समय वहाँ दिखाई नहीं दे रहा था। सुषमा ने फुटपाथ पर लेटे लड़के का माथा छू कर देखा। उसे तेज बुखार था। शिवम से आँखें मिलीं तो वह धीरे से मुस्कराया। "तुम्हारा नाम क्या है?"—शिवम ने पूछा।

"रमन।"

"तुम यहाँ कैसे आ गए?"

रमन ने बताया—"मैं थोड़ी दूर पर एक स्टोर में काम करता था। आज मुझे बुखार था, इसलिए देर से दुकान पहुँचा तो मालिक ने काम से निकाल दिया। मैंने बुखार होने की बात कही पर उसने एक न सुनी। मुझे पगार का बकाया भी नहीं दिया। मैं यहाँ आकर पटरी पर लेट गया। तभी ये बाबा आ गए। मेरे लिए दवा लाए, खाने को दिया। फिर ये अम्मा आकर मेरा सर दबाने लगी।" कह कर वह हाँफने लगा।

अब बात समझ में आ गई थी। श्यामू उसे अपना खोया हुआ बेटा समझ रहा था। क्या उसके अजीब व्यवहार के कारण ही लोग उसे सिरफिरा कहने लगे थे।

तभी आकाश में बादल घिर आए। बिजली चमकने लगी। फिर बूँदें पड़ने लगीं। श्यामू और उसकी पत्नी रमन को सहारा देते हुए ले चले। निश्चय ही वे उसे अपने घर ले जा रहे थे। सुषमा भी शुभम के साथ घर लौट आईं "माँ, इस समय चीतल कहाँ होगा?"—शुभम ने आकाश की ओर देखते हुए पूछा।

"अच्छा हो वह माँ-बाप के पास लौट आए। देखो न मौसम कितना खराब है।"—सुषमा ने शिवम का सिर सहला कर कहा। "आप और पापा मुझे कितना प्यार करते हैं। चीतल के माता-पिता भी तो आप जैसे होंगे।"—शिवम ने कहा।

3

"सभी बच्चों के मम्मी-पापा ऐसे ही होते हैं।"—कहते हुए माँ ने बेटे को आलिंगन में बाँध लिया। बाहर बारिश तेज हो गई थी।

बच्चों की पुस्तकों का अनुवाद- समस्या व चुनौती





सुमन बाजपेयी

शिक्षा : एम.ए. हिंदी ऑनर्स व पत्रकारिता का अध्ययन।

संप्रति : चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, जागरण सखी, मेरीसंगिनी और 'फोर्थ डी वुमन' आदि पत्रिकाओं में विभिन्न संपादकीय पदों पर कार्य किया। 32 सालों से कहानी, कविता व महिला विषयों तथा बाल-लेखन में संलग्न। 600 से अधिक कहानियाँ, 800 से अधिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

प्रकाशित पुस्तकें : खाली कलश, ठोस धरती का विश्वास, अग्निदान, एक सपने के सच होना, अपने बच्चे को विजेता बनाएँ, सफल अभिभावक कैसे बनें, मलाला हूँ मैं, इंडियन बिजनेस वूमेन, इंदिरा गांधी।

संपर्क :

ईमेल : sumanbajpai@yahoo.co.in

बच्चों के साहित्य का अनुवाद अपने आपमें एक बहुत ही विशेष और अलग क्षेत्र है और अनुवादकों को इस क्षेत्र में ऐसी समस्याओं व चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो वयस्कों की किताबों के अनुवाद में नहीं आती हैं। हालाँकि बच्चों व वयस्कों की किताबों का अनुवाद करने के बीच एक स्पष्ट सीमा को परिभाषित करना आसान नहीं है और यही कारण है कि कई बार इस सीमा को समझ न पाने के कारण बच्चों के लिए अनुवाद करते समय चूक हो जाती है।

ऐसा सोचा जा सकता है कि बड़ों की तुलना में बच्चों के लिए अनुवाद करना सरल कार्य है, जबकि वयस्कों की किताबों का अनुवाद करने की अपेक्षा बच्चों के लिए अनुवाद करना ज्यादा कठिन है। वयस्क साहित्य में आप शब्दों के साथ खेल सकते हैं, भावों की अभिव्यक्ति में उतार-चढ़ाव कर सकते हैं, पर बच्चों के साहित्य में ऐसा करना संभव नहीं है। बच्चों के लिए किए जा रहे अनुवाद में अनुवादक को बहुत अधिक स्वच्छंद होने की भूल नहीं करनी चाहिए, बल्कि उसमें हर बात स्पष्ट और सटीक या कहें, बिल्कुल मुद्दे पर होनी चाहिए। ऐसा इसलिए करना जरूरी है, क्योंकि बच्चों की एकाग्रता का दायरा बहुत छोटा होता है। अगर विषय को लंबा खींचा जाए तो उनको ऊब महसूस होने लगती है और वे किताब को पढ़ना छोड़ देते हैं।

अनुवाद के मामले में पंचतंत्र की कहानियों से बेहतरीन उदाहरण और कोई नहीं हो सकता, जो बच्चों के लिए अनुवाद करने के महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ आज 50 से अधिक भाषाओं में उपलब्ध हैं, जिन्होंने दुनिया को एक सूत्र में पिरोने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मूल रूप से

संस्कृत में लिखी गईं ये कहानियाँ दुनिया भर के पाठकों को पढ़ने को नहीं मिलतीं, अगर इनका अनुवाद नहीं किया गया होता।

अनुवादक को यह बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि वह जिस साहित्य का अनुवाद कर रहा है, उसकी अपनी विशेषताएँ हैं और उसका विशेष पाठक वर्ग है। हालाँकि सबसे बड़ी चूक अनुवादक से यहीं होती है, क्योंकि वह बच्चों के लिए अनुवाद करते समय उसकी सोच, समझ और विकास के स्तर को नजरअंदाज कर देता है। उसकी दुनिया का हिस्सा न बन पाना ही अनुवाद की सरलता व सरसता के लिए सबसे बड़ी बाधा है। जैसे बच्चों के लिए लिखते समय लेखक के लिए उसके धरातल पर आकर उसकी दुनिया, मन व

"मूल भाषा में लिखी गई किताब एक विशेष पृष्ठभूमि पर लिखी गई हो या उसके पात्र एक विशिष्ट स्थान या संस्कृति का हिस्सा हों, ऐसे में अनुवादक उसे जिस भाषा में अनुदित कर रहा हो और जिस पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए अनुदित कर रहा हो उसके अनुसार ही उसे शब्दों, भावों और स्थितियों का चयन करना चाहिए।"

अपेक्षाओं को महसूस करना अनिवार्य होता है, वैसे ही अनुवाद करते समय भी इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

हो सकता है कि मूल भाषा में लिखी गई किताब एक विशेष पृष्ठभूमि पर लिखी गई हो या उसके पात्र एक विशिष्ट स्थान या संस्कृति का हिस्सा हों, ऐसे में अनुवादक उसे जिस भाषा में अनुदित कर रहा हो और जिस पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए अनुदित कर रहा हो, उसके अनुसार ही उसे शब्दों, भावों और स्थितियों का चयन करना चाहिए। ऐसा करना इसलिए अनिवार्य होता है ताकि बच्चा जब उस किताब को पढ़े तो उसके संदर्भों को अपने जीवन, समाज व स्थितियों से जोड़ सके। तभी वह उसका आनंद उठा पाएगा।

कई बार मूल पाठ में वर्णित संस्कृति, परिवेश व संदर्भों के बारे में उस पाठक वर्ग को ज्ञान नहीं होता जिसके लिए उसे अनुदित किया जा रहा है, ऐसे में उसके लिए वह किताब उसमें दिलचस्पी पैदा नहीं कर पाती है और पढ़ने के दौरान उसे एक ऊब महसूस होने लगती है। ऐसे कुछ संदर्भ हैं जिन पर खास गौर करना पड़ता है—ये हैं साहित्यिक संदर्भ, मूल पाठ में विदेशी भाषाएँ, पौराणिक व प्रचलित मान्यताओं का जिक्र, ऐतिहासिक, धार्मिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि, इमारतें व घर का सामान, भोजन, रीति-रिवाज, खेल, वनस्पति, व्यक्तियों के नाम, वस्तुओं के नाम, भौगोलिक नाम आदि।

वास्तव में बच्चों की किताबों के अनुवादक के लिए यह भी जरूरी है कि वह अपने अनुवाद को समृद्ध व तथ्यों की पुष्टि करने के लिए संबंधित जानकारी व आँकड़ों के बारे में अवगत हो। किसी भी पुस्तक का अनुवाद एक सहज प्रक्रिया नहीं होती है, बल्कि दो भिन्न भाषाओं यानि कि मूल भाषा व जिसमें उसे अनुवाद किया जा रहा है, और सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। और यह अनुवाद बच्चों की किताबों का हो तो यह समस्या और बढ़ जाती है, क्योंकि उन्हें उस संस्कृति के बारे में बहुत कम ज्ञान होता है, जिस भाषा से उसे अनुदित किया गया होता है।

अनुवादक के लिए सबसे बड़ी चुनौती है उस पतली रेखा को न पार करते हुए एक संतुलन बनाकर चलना, अर्थात बहुत ज्यादा विदेशी पुट रहने देने से बचना, जिससे बच्चे के लिए उसे समझने में दिक्कत न आए और उन छोटी-छोटी बातों को नजरअंदाज न करना जो कहानी को एक परिवेश प्रदान करती हैं।

बच्चों को हमें ऐसी रचना देनी है जो उसकी समझ के अनुरूप हो और साथ ही वह उनके अंदर मूल्यों का विकास करने में भी योगदान दे। इन्हीं उद्देश्यों की वजह से उस समय ये चुनौतियाँ अनुवादक के सामने खड़ी होती हैं जब वह बच्चों की किताबों का अनुवाद करना आरंभ करता है। इन चुनौतियों से उभरने के लिए विशेष तकनीकों का इस्तेमाल करने की आवश्यकता होती है।

बच्चों की किताबों के अनुवाद में आने वाली समस्याएँ इस तथ्य से जुड़ी हैं कि बच्चों की किताबें बाल पाठक की पसंद, आवश्यकताओं, प्रतिक्रियाओं, ज्ञान और उसकी पढ़ने की क्षमता और ऐसे साहित्य के उद्देश्य का विशेष ध्यान रखते हुए तैयार की जाती हैं। अनुवाद करते हुए दिमाग में यह बात रखनी चाहिए कि हम एक विशेष-वर्ग के लिए जो एक खास पाठक होता है और एक विशेष उद्देश्य के लिए अनुवाद कर रहे हैं।

बच्चों की किताबों का अनुवाद करने से पहले आवश्यक है दिमाग में यह बात निश्चित कर लेना कि किस पाठक वर्ग और किस उद्देश्य के लिए इसे अनुवाद किया जा रहा है। बच्चों के साहित्य का एक विशेष उद्देश्य होता है जो अनुवाद में नजर आना चाहिए। इसके दो मुख्य उद्देश्य माने जाते हैं—पहला अधिक से अधिक साहित्य बच्चों को उपलब्ध कराना और दूसरा बच्चों की सोच व फलक को उसके माध्यम से विस्तार देते हुए देश-विदेश के साहित्य तथा विभिन्न देशों की संस्कृति और व्यवहार से परिचित कराना।

बच्चों के अनुवादक को बाल पाठक की भाषाई और ज्ञानात्मक क्षमताओं को मिश्रित करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसके लिए बार-बार यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि उसका बाल पाठक अभी परिपक्वता के दायरे में नहीं आया है और इसलिए उसके लिए शब्दों से लेकर भावों तक पर पैनी नजर रखना अनिवार्य है।

प्रत्येक की पढ़ने की क्षमता उस विकास के स्तर पर निर्भर करती है जो उसने प्राप्त किया है, यानि कि पढ़ने के लिए हमें विकास की अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है और ये अवस्थाएँ हैं—शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक और व्यक्तित्व

व भाषा संबंधी। पाठक के पढ़ने की क्षमता इन्हीं अवस्थाओं के मेल पर निर्भर होती है और बच्चों को उनके सीमित अनुभव के कारण विशेष पाठक कहा जा सकता है। वयस्क पाठकों में जो ज्ञान होता है, बच्चों में वैसे ज्ञान की कुछ कमी होती है, क्योंकि वे तब तक विकास की सारी अवस्थाओं से गुजरे नहीं होते हैं, इसलिए वे जो भी पढ़ते हैं, चाहे वह अपनी मातृभाषा में हो या अनुवाद, उन्हीं की समझ के अनुसार उसे तैयार किया जाना चाहिए।

मूल रचना का बच्चों की जरूरतों, उनकी संस्कृति और आयु वर्ग के हिसाब से अनुवाद किया जाना जरूरी होता है, जिसे अकसर नजरअंदाज कर दिया जाता है और हू-ब-हू या शब्दिक अनुवाद होने की वजह से जहाँ एक तरफ उस किताब की खूबसूरती व गुणवत्ता पर असर पड़ता है, वहीं दूसरी ओर रोचकता के अभाव में बच्चों की उसे पढ़ने की दिलचस्पी भी खत्म हो जाती है।

बच्चों की पुस्तकों के अनुवाद में भाषा की क्लिष्टता सबसे बड़ी चुनौती है। अच्छा अनुवादक भी शाब्दिक अर्थों को रखने के प्रयास में सरल शब्दों को छोड़ जटिल शब्दों का प्रयोग करने की गलती कर बैठता है। भाषा को सजाकर पेश करने से, उसे अलंकृत करने से, बच्चा एक गति में पढ़ने में असमर्थता महसूस करता है। भाषा व शैली दोनों की ही स्पष्टता अनुवाद को सहज व रोचक बनाने में मदद करते हैं। साथ ही वाक्य जितने छोटे होंगे, बच्चों के लिए पढ़ना उतना ही आसान होगा। मूल भाषा में अगर वाक्य बड़े हैं तो भी अनुवादक उसे छोटे-छोटे वाक्यों में तोड़कर उस बात को कह सकता है। इससे भाव या अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। साथ ही बच्चों के अनुवादक को बच्चों के आयु वर्ग के अनुसार भाषा को अपनाना चाहिए। जहाँ तक भाषा का संबंध है, अनुवादक के लिए, अपने पाठक के लिए, उसका नए सिरे से रूपांतरण करना आवश्यक है।

कई लोग सवाल उठाते हैं कि पाठक वर्ग के अनुसार अगर बदलाव किया जाए तो इससे मूल पाठ की सार्थकता और खूबसूरती नष्ट हो जाएगी और फिर उसे अनुवाद की श्रेणी में कैसे रखा जा सकता है? लेकिन ऐसा है नहीं। यहाँ हम यह नहीं कह रहे हैं कि केवल वातावरण या जगह के अनुसार अनुवाद करना चाहिए, बल्कि वह बच्चों का परिचय विदेश की पृष्ठभूमि व परिवेश से भी करा सकता है, पर चुनौती यह है कि उसे इस तरह पेश किया जाए कि बच्चे को समझने में परेशानी न हो। ऐसे शब्द या चीजें जो किसी विशिष्ट संस्कृति का हिस्सा हैं, कोष्ठकों में उनके बारे में विस्तार से समझाया जा सकता है। उसके लिए मूल नाम, स्थान आदि में बदलाव करने की आवश्यकता नहीं होती है। ऐसी स्थिति में अनुवादक इस बात पर जोर देता है कि यह कहानी वास्तव में किसी दूसरे देश तथा संस्कृति से जुड़ी हुई है और वह चाहता है कि बच्चे ज्यादा से ज्यादा नई संस्कृति व नई चीजों के बारे में जानें और अंतरराष्ट्रीय विषयों के बारे में अपना ज्ञान बढ़ाएँ। कई बार अंग्रेजी, जर्मन या अन्य किसी विदेशी भाषा में प्रयुक्त व्यक्तियों के नामों को बदलने को लेकर भी सवाल उठाए जाते हैं। उन्हें उसी तरह से लिखा जाए या भाषा के अनुसार उनमें बदलाव कर दिया जाए, यह एक चुनौती भी अनुवादक के सामने आती है।

अनुवादक का भाषा से प्यार करना, शब्दों का आनंद उठाना, वाक्यों से खुशी प्राप्त करना और विचारों से प्रेरित होना जरूरी है। अनुवादक का मूल भाषा और जिस भाषा में वह अनुवाद कर रहा है, दोनों में ही प्रवीण होना अनिवार्य है तभी वह एक सारगर्भित अनुवाद कर सकता है।

अनुवाद का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है आधुनिकीकरण। कुछ किताबों में दी गई घटनाओं व स्थितियों का आधुनिकीकरण करने की अनिवार्यता होती है। यह बात क्लासिक्स के संदर्भ में ज्यादा सटीक बैठती है। पुराने के स्थान पर नई अभिव्यक्ति और अभिव्यंजनाओं का इस्तेमाल, यहाँ तक कि आधुनिक वस्तुओं व विचारों का समावेश भी करना चाहिए। उदाहरण के लिए जब आप दूसरी पृष्ठभूमि की किन्हीं लोककथाओं का अनुवाद कर रहे होते हैं तो उसमें पुराने पारंपरिक घरों (जो गोल होते थे और जिनकी दीवारें डंडियों तथा छतें घास से ढकी होती थीं, को उस समय आधुनिक कमरे होने का दर्जा दिया जाता था) को आम नए घरों (जो या तो चौकोर या आयाताकार होते हैं, और ईंटों से बने होते हैं, जिनकी छतों पर टाइल्स लगी होती हैं) से बदलना होगा, क्योंकि बच्चों के लिए पुराने पारंपरिक घरों के सही वर्णन के बारे में सोच पाना कठिन होगा, क्योंकि उनके लिए घर वही होता है जिसमें वे रहते हैं या जिन्हें चित्रों के माध्यम से वे अपनी कल्पना में साकार करते हैं।

अगर आपके पास शब्द हैं तो अनुवाद करना कठिन नहीं है, पर किसी संस्कृति, दर्शन, कल्पना और रचनात्मकता का अनुवाद करना एक कठिन कार्य है, लेकिन अगर अनुवादक भी लेखक व चित्रकार की तरह बच्चों को समझता व उनसे प्यार करता है, उनकी दिक्कतों के प्रति संवेदनशील है और उनकी समझ के स्तर को अपना सकता है, तो उसके लिए अनुवाद की चुनौतियाँ खत्म हो सकती हैं। इन सब बातों के बिना अनुवाद अच्छा तो हो सकता है पर बेहतरीन नहीं।

हमें यह समझना चाहिए कि बच्चों की किताबों के अनुवाद के लिए भी हमें वैसे ही उच्च मानक तय करने होंगे जैसे कि हम वयस्कों की किताबों के लिए निश्चित करते हैं। इसमें पूर्ण समर्पण की जरूरत होती है। अनुवाद की मांग है कि हम बच्चों को उन्हीं की भाषा में दूसरे लोगों के अनुभवों व उनकी संस्कृतियों के बारे में पढ़ने का अवसर दें और वह भी इतने सरल ढंग से कि बच्चा उन अनुभवों व संस्कृतियों को समझ सके और उनसे सीख सके और केवल सीखने व अपनाने से ही अंतर व दूरियाँ खत्म होती हैं और यही अनुवाद की सबसे बड़ी चुनौती है कि उसके माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों की दूरी को कैसे भरा जाए।

वीर स्थली का सिंह नाद





शशि पाधा

शिक्षा : एम.ए. हिंदी, संस्कृत; बी.एड., जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय।

प्रकाशन : चार काव्य-संग्रह, एक संस्मरण संग्रह। चार सहयोगी-संग्रह। लघु कथा, हाइकु, दोहा, कहानी, माहिया, क्षणिकाएँ, आलेख, आदि विधाओं में लेखन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

सम्मान : केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा काव्य संग्रह 'अनंत की ओर' पुरस्कृत।

संपर्क : shashipadha@gmail.com

1 जुलाई, 2016 को भारतीय सेना की एक महत्त्वपूर्ण पलटन '9 पैरा स्पेशल फोर्सेस' अपना 50वाँ स्थापना दिवस बड़े उत्साह और गर्व के साथ मना रही थी। सेना से सेवानिवृत हुए बहुत से अधिकारी भी सपरिवार इस महाकुंभ में भाग लेने के लिए देश-देश से आए हुए थे। धर्म स्थल पर सामूहिक पूजा-अर्चना, सेवा निवृत और सेवारत सभी सैनिकों का बड़ा खाना, मैस में प्रीतिभोज, और भी न जाने कितने कार्यक्रमों में यह तीन दिन कैसे बीते, पता ही नहीं चला। कुछ लोग अपने कैमरे में इन मधुर स्मृतियों को सदा के लिए कैद कर रहे थे और कुछ विडिओ रिकॉर्डिंग में। और मैं..... वहाँ से अपने मानस पटल पर जो अविस्मरणीय चित्र उकेर कर लाई, उसे आपके सामने प्रस्तुत करते हुए मुझे जिस रोमांच, गर्व, ममता, कृतज्ञता और श्रद्धा की मिलीजुली भावना ने घेर रखा है, उसे शब्दों में बाँध पाना मेरे लिए असाध्य कार्य है। मेरा इस पलटन के साथ भावनात्मक संबंध है। 1965 के भारत-पाक युद्ध के बाद 'मेघदूत फोर्स' के नाम से इस पलटन की स्थापना हुई थी। मैंने भी लगभग 5 दशक पहले वर्ष 1968 में एक नई नवेली दुल्हन के रूप में सूरमाओं के इस परिवार में अपने सैनिक जीवन का पहला कदम रखा था। उन दिनों यह पलटन अपनी शैश्वावस्था में जम्मू नगर के डंसाल गाँव के पास एक पहाड़ी क्षेत्र में स्थित थी। आज यह पलटन जम्मू-कश्मीर की उधमपुर छावनी में स्थित है।

इस पलटन के मुख्य कार्यालय के ठीक सामने एक छोटा-सा प्राकृतिक टीला है। वर्षों से वहाँ पर फूल आदि लगाए जाते हैं। इस टीले का भूगोल यही है कि चाहे मैस में जाओ चाहे ऑफिस, चाहे खेल के मैदान में जाओ चाहे बैरकों की ओर, यूनिट में किसी ओर भी जाओ, आते-जाते इस टीले पर आपकी दृष्टि



अवश्य पड़ेगी। इसी चतुर्दशी टीले की गौरवशाली मिट्टी की गोद में स्थापित की गई हैं, इस पलटन के चार अशोक चक्र विजेता रणबाँकुरों की काँस्य मूर्तियाँ। सिंह जैसे अप्रतिम बल के धनी यह चार शूरवीर हैं—मेजर अरुण जसरोटिया, मेजर सुधीर वालिया, लांस नायक छत्री एवं लांस नायक मोहन गोस्वामी। कश्मीर घाटी में आतंकवादियों के साथ लोहा लेते हुए इन चारों ने महाबलिदान की सर्वोच्च मिसाल कायम की है। यह चार शूरवीर केवल पलटन के लिए ही नहीं पूरे भारत के लिए अखंडता, एकता, वीरता और शौर्य की जो गाथा अपने रक्त से जिन अक्षरों में लिख कर गए हैं, उसे युगों-युगों तक इतिहास के पन्नों में पढ़ते हुए भारतवासी प्रेरित होते रहेंगे और अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते रहेंगे।

अपने जीवन के 50 वर्षों में यह पलटन अनगिनत वीर चक्र, शौर्य चक्र, कीर्तिचक्र, सेना मेडल एवं कई अन्य वीरता के पदकों से विभूषित हुई है। इस पलटन को बाह्य एवं आंतरिक युद्ध में अप्रतिम वीरता का प्रदर्शन करने के कारण तीन बार भारतीय सेना के सेनाध्यक्ष ने प्रशस्ति-पत्र से सम्मानित किया। इसके साथ ही कई बार अन्य मिलिट्री कमांडरों द्वारा समय-समय पर इस यूनिट को वीरता प्रदर्शन के लिए पुरस्कृत किया गया है। हम सब के लिए यह बहुत गर्व की बात है कि इस पलटन को 'Bravest of the Brave' के गौरवशाली सम्मान से भी विभूषित किया गया है।

स्थापना दिवस के महोत्सव में मेरे लिए सब से महत्त्वपूर्ण एवं रोमांचकारी पल थे, जब इन चार महायोद्धाओं की मूर्तियों पर माल्यारोपण के लिए सभी अधिकारी, जे.सी.ओ., सैनिक एवं उनके परिवार के सदस्य इस टीले के सामने एकत्रित हुए थे। मेरे साथ ही खड़े थे प्रथम अशोक चक्र विजेता मेजर अरुण जसरोटिया के बड़े भाई, उनके साथ ही अपने वीर पुत्र की मूर्ति को अपलक निहार रहे थे दूसरे अशोक चक्र विजेता मेजर सुधीर कुमार के वृद्ध पिता। तीसरे अशोक चक्र विजेता लांस नायक छत्री के परिवार से तो कोई नहीं आ पाया था किंतु पूरी पलटन उनके लिए नत मस्तक हो खड़ी थी। मेरा हाथ थामे खड़ी थी चौथे अशोक चक्र विजेता लांस नायक मोहन गोस्वामी की युवा पत्नी 'भावना' अपनी 8 वर्ष की बेटी 'भूमिका' के साथ। एक-एक करके सभी अधिकारी इन मूर्तियों पर श्रद्धा सुमन चढ़ा रहे थे और हम सब खड़े उन्हें अपनी मौन श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। माँ वैष्णो देवी की पहाड़ी से आती हुई सुबह की हल्की-हल्की धूप, अमरत्व के चिह्न इन मूर्तियों को धीमे-धीमे सहला रही थी और उनकी शीतल-शांत परछाईं छू रही थी अपने पिता को, भाई को, पत्नी को, बच्ची को और श्रद्धा में नत खड़े असंख्य सैनिकों को। अचानक मुझे लगा कि भावना के हाथ की पकड़ मेरे हाथ पर और मजबूत होती जा रही थी। कुछ महीने पहले ही वैधव्य के दारुण संसार में अपना अस्तित्व खोजती, दुबली-पतली पहाड़ी लड़की, भावना, शायद एक बड़ी बहन के हाथों में कोई ढाँढ़स, कोई सांत्वना, कोई सहारा ढूँढ़ रही थी। उन महायोद्धाओं की मूर्तियों की परछाईं की दिव्य उजास में मुझे आभास हुआ कि कहीं भी तो नहीं गए हैं 'वे'। यहीं तो हैं, धूप की गुनगुनाहट में, हवा की सुगंध में, आकाश के विस्तार में और धरती के धैर्य में। उस समय वातावरण में अपनों को खोने के दुःख की नमी भी थी और शौर्य की धूप की गरिमा भी।



समारोह के समापन के बाद मैंने उस वीर स्थली की तस्वीर ली थी। दो दिन बाद हम सब इस वीरोत्सव की मधुर स्मृतियाँ सहेजे अपने-अपने घर लौट आए। कई दिनों के बाद जब मैंने पुनः उस तस्वीर को देखा तो मुझे लगा कि कुछ-कुछ वैसा ही मैंने कभी-कहीं पहले भी देखा है। सुधियों की पिटारी खोली तो वर्षों पहले ली गई एक तस्वीर मेरी अँखियों के सामने खुल गई। मैं लौट गई अपने अतीत में।

वर्ष 1967 में मैं जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करते हुए वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए मैं 'बनारस हिंदू विश्वविद्यालय' गई थी। वहीं से कुछ मील दूर सारनाथ में देखा था अशोक स्तंभ, जिसके शीर्ष पर सुशोभित थे चार सिंह। उसके बाद इन चार सिंहों का विराट रूप देखा था राजकीय मोहर पर, राजकीय चिह्न के रूप में। भारत की एकता, अखंडता और अक्षुण्णता का सिंह नाद वर्षों से यही चार पराक्रमी—बलशाली सिंह चहुँ दिशाओं में, सात समुद्र पार, ऊँचे से ऊँचे पर्वत शिखरों की सीमाओं को लाँघ युगों-युगों से करते आए हैं।

मन की परतों में लिखे इतिहास के पन्नों को खोला तो याद आया कि 'कलिंग' के युद्ध के बाद मानव संहार से क्षुब्ध हुए महाराज अशोक ने धर्म परिवर्तन की घटना के स्मारक के रूप में इस स्तंभ का निर्माण करवाया था ताकि पूरे विश्व में अहिंसा का प्रचार-प्रसार हो सके। दोनों चित्रों को देखते हुए मेरे मन में कई प्रश्न उभरे। संसार से हिंसा की भावना को सदा के लिए मिटाना और मानव को मानव से प्रेम का संदेश देता हुआ सारनाथ स्तंभ का सिंह चक्र उस समय जनहित के लिए विशेष उद्देश्य को ध्यान में रख कर जिन मूल कारणों के निवारण के लिए बनवाया गया था वो कारण आज भी वैसे के वैसे ही मानवता को लील रहे हैं। संसार आज भी उसी हिंसा और संहार की अग्नि में झुलस रहा है। प्रतिदिन कई वीरों के महाबलिदान से सीमाएँ रक्त रंजित हो रही हैं और कितनी वीर नारियों की माँग का सिंदूर उस रक्त में बह रहा है। प्रश्न वहीं खड़े हैं, पाषाण स्तंभ की तरह और हम समाधान ढूँढ़ रहे हैं आतंकवाद से ग्रस्त पूरे विश्व में, चारों दिशाओं में, शिखर वार्ताओं में, और न जाने कहाँ, कब से?

आज 9 पैरा स्पेशल फोर्सेस की वीर स्थली पर खड़े अशोक चक्र विजेता चार महावीरों की तस्वीर सारनाथ के स्तंभ पर अंकित सिंहों की तस्वीर का इतिहास पुनः दोहरा रही है। अगर उस समय अहिंसा के परम धर्म के प्रसार के लिए सिंह नाद हुआ था तो आज इन चारों वीरों की काँस्य मूर्तियाँ भी अपने रण घोष से पूरे भारत को उद्बोधन का संदेश दे रही हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतवासी इन पराक्रमी वीरों के स्मृति स्थल पर अपना माथा टेक यह प्रण लेंगे कि जिस आतंकवाद को समूल मिटाने में इन वीरों ने अपने प्राण उत्सर्ग किए हैं, आज का भारत उस शत्रु से लोहा लेते हुए उनके सिंह नाद को भूलेगा नहीं। एक बार फिर से कृतज्ञ राष्ट्र विश्व शांति की ज्योत प्रज्ज्वलित करके विश्व के कोने-कोने को दैदीप्यमान करेगा।

जय हिंद—जय हिंद की सेना।



दिविक रमेश

हिंदी के वरिष्ठ एवं प्रतिष्ठित कवि, अनुवादक एवं बाल साहित्यकार। 1946 में दिल्ली के किराड़ी गाँव में जन्म। नौ कविता संग्रह, अनुवाद की छह पुस्तकें, आलोचना की पाँच और लगभग 45 बाल साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित हैं। हिंदी अकादमी, दिल्ली साहित्यकार सम्मान, भारत में कोरियाई दूतावास प्रशंसा-सम्मान, भारतीय अनुवाद परिषद के द्विवागीश पुरस्कार सहित अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। दक्षिण कोरिया में भारत सरकार की ओर से हांगुक विश्वविद्यालय, सोल में विज़िटिंग प्रोफेसर के पद पर रह चुके हैं।

संपर्क : मो.: 9910177099

ईमेल : divikramesh34@gmail.com

नानू को समझाओ

मम्मी नानू को समझाओ
पीछे-पीछे आ जाते हैं।
जब स्कूल से आते तब भी
हमको लेने आ जाते हैं।

हम क्या छोटू बच्चे हैं अब
खुद चलकर भी आ सकते हैं।
मम्मी नानू को समझाओ
क्यों वे इतना घबराते हैं।

यूँ तो जब-तब हमें सिखाते
स्वयं करो जी अपना काम।
लेकिन करने लगते हैं जब
बस आ धमकते नानू राम।

अरे मजाक हमारा बनता
नानू कहाँ समझ पाते हैं।
छोटू-पप्पू जब सब कहते
सुन सुन कितना शरमाते हैं।

खूब जानते नानू हमको
ढ़ेरमढ़ेर प्यार हैं करते।
पर जो मुश्किल हम बच्चों की
क्यों ना नानू उसे समझते!

●●●



स्कूल जाता बच्चा

स्कूल
जा रहा है
बच्चा

कंधे पर लदा है बस्ता
जिसमें भरी हैं
दर्जन भर किताबें
और पिता की आकांक्षाएँ

पिता
जो किसान की तरह
पकती फसल देखकर
सुखी-चिंतित है।

स्कूल जा रहा है बच्चा

अपने गुजरे बचपन की स्मृतियों में
सख्त मनाही है बच्चे को
बचपना दिखाने की।

मगर कहीं भी
कभी भी वह
निकालेगा कॉपी या किताब कोई
फाड़ेगा पन्ना
बनाएगा जहाज
और उड़ा देगा
आकाश को लक्ष्य कर।

●●●

हमारे बच्चे

हमारे बच्चे भी चलते हैं ठुमक-ठुमक
उनकी भी पैंजनियाँ मधुर बजती हैं

हमारे बच्चे भी चुराकर खाते हैं तिलगुड़ी
हमारे बच्चे भी तोड़ते हैं खिलौने, स्लेट, धनुष

मगर हमारे बच्चों की लीलाएँ देखकर
कवि उपमाएँ नहीं गढ़ते
देवता पुष्प वर्षा नहीं करते।

●●●



परमेन्द्र सिंह

जन्म : 10 जून 1970, मुज़फ्फरनगर।

संप्रति : हंस, वागर्थ, वर्तमान साहित्य आदि पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित।

प्रकाशित पुस्तकें : कविता संग्रह 'कोई भी अंत अंतिम नहीं'।

संपर्क : 9760344345

ईमेल : psingh.mzn@gmail.com





श्याम सुशील (श्यामसिंह सुशील)

जन्म : 28 अगस्त 1957, बस्ती, उत्तर प्रदेश।

शिक्षा : एम.ए. (हिंदी साहित्य), दिल्ली विश्वविद्यालय।

संप्रति : दैनिक 'हिंदुस्तान' (हिंदुस्तान टाइम्स लि., नई दिल्ली) में करीब बीस वर्षों तक संपादन कार्य। दूरदर्शन के साहित्यिक कार्यक्रम 'सृजन', 'फलक' और 'किताब की दुनिया' के लिए पचास से अधिक साहित्यकारों के रचनात्मक जीवन पर शोध। दूरदर्शन-रेडियो आर्काइव्स में भाषा विशेषज्ञ के तौर पर स्वतंत्र रूप से कार्य। बच्चों की पत्रिका 'नन्हीं कलम' का संपादन।

प्रकाशन : 'अपनी जमीन पर' कविता संग्रह और 'होती मैं भी चंचल तितली' बालगीत संग्रह प्रकाशित। भारतीय ज्ञानपीठ की किशोर साहित्य शृंखला के अंतर्गत 'श्रीकृष्ण' (जीवन कथा) का प्रकाशन। 'बात से बात : केदारनाथ सिंह के साथ' तथा 'मेरे साक्षात्कार' सीरीज के अंतर्गत अमृता प्रीतम और त्रिलोचन के साक्षात्कारों की किताब का संपादन।

संपर्क : मो. 09871282170

ईमेल : shyamsushil13@gmail.com

हवा में कविता

उमड़-घुमड़कर आसमान में
बादल कविता रचते हैं
फूल लुटाकर अपनी खुशबू
हवा में कविता रचते हैं
बारिश की बूँदें धरती पर
रिमझिम कविता रचती हैं
सूरज की किरणें फसलों पर
झिलमिल कविता रचती हैं
मस्ती में जब हँसते हैं हम
खिलखिल कविता रचते हैं
आते हैं जब काम किसी के
हिलमिल कविता रचते हैं।

बजते-बजते बजी बाँसुरी

बजते-बजते बजी बाँसुरी
सजते-सजते सजा सितार
ढम्म-ढमाढम ढोल बजा तो
गुनगुन गूँजा गजब गिटार

ता-धिन ता-धिन तबला थिरका
झन-झन झाँझर की झंकार
बनते-बनते बात बनी तो
मिल गया मन से मन का तार

गाते-गाते गीत बना तो
रचते-रचते रच गया राग
ताबड़तोड़ तालियाँ बोलीं—
साँसें हैं जीवन का साज!



समीक्षक : **पल्लव**
लेखक : **स्वयं प्रकाश**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 52
मूल्य : रु. 55/-

प्यारे भाई रामसहाय

ऐसा क्यों है कि बड़े और प्रसिद्ध रचनाकार आमतौर पर बच्चों के लिए नहीं लिखते। हिंदी में यह काम बाल साहित्य के विशेषज्ञों के लिए आरक्षित बन जाता है और परिणाम स्वरूप बच्चों को नंदन वन और चंपक वन की कथाओं से आगे कुछ खास नहीं मिल पाता। ऐसा विश्व की बड़ी भाषाओं को तो छोड़िए, भारतीय भाषाओं में भी नहीं होता। इधर अब थोड़ा बदलाव आ रहा है। स्वयं प्रकाश ने कभी बच्चों के लिए एक उपन्यास लिखा था—'परमाणु भाई की दुनिया में', अब उन्होंने एक पूरी किताब कहानियों की बच्चों के लिए लिख दी है—'प्यारे भाई रामसहाय'।

यह एक शृंखला की तरह बाल पत्रिका चकमक में प्रकाशित हुई थी और कहना न होगा कि पढ़ने वाले बच्चों और बड़ों ने इसे बहुत पसंद किया। यहाँ स्वयं प्रकाश की कथा प्राविधि यह थी कि वे अपने एक काल्पनिक मित्र रामसहाय को चिट्ठियाँ लिखते हैं और हर चिट्ठी में बचपन का एक किस्सा या शरारत। चिट्ठी का विचार ही सुंदर है क्योंकि इधर धीरे-धीरे पत्र लिखना खत्म होता जा रहा है और संवाद के नाम पर फोन, एस.एम.एस. या ई-मेल रह गए हैं। हम जानते हैं कि पत्र केवल संदेश नहीं देते, वे हमको विचार करना सिखाते हैं और पत्रविहीन समाज असल में विचारहीन समाज होता जाता है। यहाँ इस शृंखला से चुनकर दस कहानियाँ दी गई हैं। ध्यान से देखने पर ये वे कहानियाँ हैं जो ऊपर से मजे-मजे की बातें करती हैं, लेकिन इनके अंदर से कुछ गंभीर निकल रहा है। स्वयं प्रकाश सावधान रचनाकार हैं, वे विचारधारा को साहित्य के लिए जरूरी समझते हैं और जानते हैं कि उपदेशों से बच्चों का कुछ भी भला नहीं होने वाला, इसलिए यहाँ संदेश भले निकलता हुआ दिखाई दे लेकिन थोपा नहीं लगता और अस्वाभाविक तो बिल्कुल नहीं। उदाहरण के लिए पहली ही कहानी बेर की गुठली लेते हैं। कहानी यह कि बचपन में डराया जाता है कि गुठली पेट में चली गई तो सर पर पेड़ उग आएगा। तब भले ही ऐसी बात भलाई के लिए कही जाती रही हो, लेकिन इसके दूरगामी परिणाम होते हैं। बच्चों को काल्पनिक भय दिखाकर उनके भीतर कैसे ग्रंथियाँ बना दी जाती हैं और पूरा जीवन ये बच्चे इन ग्रंथियों से जूझते रहते हैं। यहाँ बेर की गुठली केवल एक प्रतीक समझें या उदाहरण, बात दूर तलक जाती है।

ऐसे ही एक कहानी भाषा की चुहल है, जिसमें स्वयं प्रकाश भाषा और बच्चों के अनौपचारिक संबंधों की व्याख्या करते हैं। बच्चे हरकेश की कैसी व्याख्या करते हैं और कैसे नए-नए अर्थों को खोजने के लिए उत्सुक होते हैं यह देखने योग्य है। जैसे एक प्रसिद्ध फिल्मी गीत की पैरोडी देखिये—

जो वादा किया, वो भुलाना पड़ेगा
जो कांदा दिया, वो कटाना पड़ेगा
जो गीला किया, वो सुखाना पड़ेगा
नहीं तो पुलिस को बुलाना पड़ेगा।

गहरी बात यह है कि हम जो समाज बना रहे हैं उसकी बुनियाद की तरफ भी तो ध्यान दिया जाए। बच्चे हों और भूत प्रेत की बातें न हो? यहाँ भी हैं लेकिन अंदाज बिल्कुल नया। आखिरी कहानी में स्वयं प्रकाश एक किस्सा सुनाते हैं, जब वाचक बचपन में दोस्तों के साथ श्मशान जाता है ताकि गणित के पेपर में सारे सवाल आ जाएँ, कहानी का आखिरी हिस्सा देखिए—बालकिशन ने जैसे ही राख उठाने के लिए हाथ बढ़ाया, कहीं कोई कुत्ता बड़ी जोर से भूऊऊ करके रोया। बालकिशन एकदम सकपका कर पीछे हटा। जक्कू तो चीख पड़ा और मुड़कर भागा। इसी समय चिता के पीछे से हाथ में गिलास लिए बिखरे बालों वाली एक मोटी और काली कलूटी औरत उठ खड़ी हुई। उसके दाँत बाहर निकले हुए थे, आँखें लाल थीं। उसे देखते ही हममें से कईयों की चीख निकल गई। सब भागे। मुन्नू धक्का खाकर गिर पड़ा। उसकी कमीज पर राधेश्याम का पाँव रख गया। मुन्नू उठा तो कमीज चर्र से फट गई। उसे लगा औरत ने उसे पकड़ लिया हो। वह बिलबिलाकर रो पड़ा। बालकिशन और राधेश्याम एक तरह से उसे उठाकर घर तक ले आए।

इस साहसिक अभियान के बहादुर यात्रियों में से कम से कम तीन ने कई साल बताया कि उस दिन उनकी निकर गीली हो चुकी थी और इसी हाल में बिस्तर में घुसकर वे सोच रहे थे कि इससे तो एक साल फेल हो जाना शायद ज्यादा ठीक रहता।

तो अर्थ यह हुआ कि बच्चों ने जब करके देखा तो इस भाग्यवाद और बाबावाद से खुद निबटे। सप्पू बन गया चाचा नेहरू, नहीं होना बीमार सरीखी कहानियाँ कोरा मनोरंजन ही नहीं करतीं। वैसे यहाँ कोरे मनोरंजन के लिए भी शुद्ध हास्य और मस्ती की कथाएँ हैं और उन्हें पढ़ना सचमुच मजेदार है। मुझे वह थप्पड़ आज तक याद है,

नाटक में बवाल और अरे, वैज्जी कहाँ हैं? जैसी कहानियाँ होना सचमुच बाल साहित्य के लिए उपलब्धिमूलक है। इन कहानियों को पढ़ते हुए स्वतंत्रता के बाद बन रहे नए भारत के दृश्य भी दिखाई दे जाते हैं और तत्कालीन समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश की झलक देखना सुखद लगता है।

स्वयं प्रकाश का बचपन अपने ननिहाल इंदौर में बीता था और अकारण नहीं कि इन कहानियों पर मालवा की बोली की मिठास आ गई है।

प्रमुख चुनिंदा बाल कहानियों का संग्रह

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

भाषा-साहित्य हमें व्यक्ति से समाज की यात्रा कराने के साथ-साथ मानसिक रूप से समृद्ध करने का कार्य भी करता है। साहित्य हमें संवेदनशीलता की दृष्टि से विस्तार देता है और भाषा अभिव्यक्ति की दृष्टि से। साहित्य के विभिन्न रूपों में एक प्रमुख नाम बाल साहित्य का भी है। बाल साहित्य यानि बच्चों के लिए उपयोगी साहित्य। इसमें बच्चों के मनोवैज्ञानिक धरातल के साथ-साथ बच्चों के शब्द भंडार और जीवन-व्यवहार की गतिविधियों पर बहुत सूक्ष्म दृष्टि रखकर, साहित्य सृजन किया जाता है। बच्चों की परवरिश और शिक्षण-स्तर में बाल साहित्य की प्रमुख भूमिका है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत प्रायः प्रत्येक विषय संबंधी स्तरीय पुस्तकों के गुणवत्तायुक्त प्रकाशन के लिए जाना जाता है। बाल साहित्य के क्षेत्र में न्यास ने कुछ प्रमुख पुस्तकें प्रकाशित की है। इनमें प्रमुख हैं– (1) डॉ. श्रीप्रसाद की चुनिंदा बाल कहानियाँ; (2) प्रकाश मनु की चुनिंदा बाल कहानियाँ; (3) विष्णु प्रभाकर की चुनिंदा बाल कहानियाँ; (4) अमर गोस्वामी की चुनिंदा बाल कहानियाँ; (5) चित्रा मुद्गल की चुनिंदा बाल कहानियाँ; (6) हरिकृष्ण देवसरे की चुनिंदा बाल कहानियाँ।

इन पुस्तकों में क्या है और ये अपने लक्षित जनसमूह के लिए क्यों और कैसे उपयोगी है? मैं इस प्रश्न पर विचार करने के दरमियान मनुष्य की अनुकरण संबंधी आदिम प्रवृत्ति पर विचार करता हूँ। मनुष्य स्वभावतः अनुकरणप्रिय होता है। ऐसे में जब वह शैश्वावस्था से बढ़ते हुए बाल्यावस्था की ओर अग्रसर होता है तो यह वह समय है जब हम मानव मस्तिष्क की तुलना कोरे स्लेट से कर सकते हैं। इस आयु विशेष में हम जो भी बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं, वे उन्हें अत्यंत शीघ्रतापूर्वक ग्रहण करते हैं। बाल साहित्य बच्चों के मनरूपी कोरे स्लेट पर जीवनोपयोगी सामग्री उपलब्ध कराता है। यही कारण है कि हम बालपन में सुनी-देखी-पढ़ी कहानियों को लंबे समय तक याद रखते हुए उनसे सीखते-समझते हैं। ईदगाह, साइकिल की सवारी, हार की जीत, चचा छक्कन ने केले खरीदे ऐसी ही कहानियाँ हैं। बहरहाल! राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा बाल साहित्य का प्रकाशन भी बच्चों के हित में स्वस्थ, सार्थक साहित्य उपलब्ध कराने का परिणाम है। बाजार के बढ़ते दबावों के बावजूद कम से कम (लागत खर्च पर) मूल्य में बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए मूल्यवान साहित्य का प्रकाशन न्यास की अत्यंत सराहनीय पहल है। न्यास न केवल इन स्तरीय पुस्तकों का प्रकाशन करता है अपितु देश ही नहीं बल्कि दुनिया में जहाँ कहीं भी इन पुस्तकों की आवश्यकता हो, पहुँचाने का भरसक प्रयास करता है। यहाँ हम कुछ पुस्तकों की सामग्री की चर्चा अनिवार्य समझते हुए आगे इन पर विचार करेंगे।



(1) डॉ. श्रीप्रसाद की चुनिंदा बाल कहानियाँ

पृष्ठ : 56; *मूल्य* : रु. 110/-

लगभग 5000 से अधिक गीतों और सैकड़ों कहानियों के लेखक डॉ. श्रीप्रसाद (जनवरी, 1932-अक्टूबर, 2012) की आठ कहानियों को इस संग्रह में संकलित किया गया है। ये कहानियाँ हैं—मेला राजकुमार, पढ़ाई, मैं बारात में था, रुनू रूठी है, ईश्वर की बोली, ठाकुर साहब, नाटक।

बचपन की गतिविधियों में मेला का आकर्षण सर्वविदित है। इसी बाल मनोविज्ञान के सूत्र को पकड़ती हुई कहानी है-मेला। 'राह का मेला' के बहाने मेले की गतिविधियों द्वारा बच्चों में पठन-पाठन, भाईचारे को मजबूती देना ही इस कहानी का लक्ष्य है। बच्चों के उपयुक्त शब्द-प्रयोग, छोटे-छोटे सरल वाक्यों के सहारे पूरी कथा बच्चों को बाँधने में सफल है। ओमनिधि, भवतोष, जगन और अतीत नामक चार पात्रों के सहारे इस कहानी में फिजूलखर्ची और किफायत खर्च के गुण दोषों को कहानीकार ने सामने रखा है। मेले तक जाने के रास्ते में खेती और अन्य प्राकृतिक सौंदर्य को भी बड़े ही मनोहारी रूप से प्रस्तुत किया गया है। कुछ नए शब्दों से भी बालक-बालिकाओं का परिचय कराया गया है। जैसे-(पृ.-7) अंधा कुआँ। "जिस कुएँ का पानी सूख जाता है, उसे अंधा कुआँ कहते हैं।" और यह सबक भी कि "बिना माँगे कोई चीज लेना तो चोरी है। हम लोगों को चोरी नहीं करनी चाहिए।" (पृ.-8)

साहित्य हमें इसी प्रकार अपने वातावरण से परिचय कराते हुए बेहतर जीवन जीने के सबक भी सिखाता चलता है। इस दृष्टि से डॉ. श्रीप्रसाद की कहानियाँ बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। कहानी के बीच-बीच में अत्यंत मनोरम चित्रों के द्वारा इसे बच्चों के लिए और रुचिकर बनाया गया है।



(2) प्रकाश मनु की चुनिंदा बाल कहानियाँ

पृष्ठ : 68; *मूल्य* : रु. 95/-

प्रकाश मनु बाल साहित्य के एक जाने-माने हस्ताक्षर हैं। 12 मई 1950 को जन्मे प्रकाश मनु ने हिंदी बाल कविता का इतिहास, हिंदी बाल साहित्य का इतिहास भी लिखा है। इस संग्रह में इनकी दस

चुनिंदा कहानियों को संकलित किया गया है। संग्रह की कहानियाँ हैं—मास्टर जी, दोस्ती का हाथ, जमुना दादी, आहा! रसगुल्ले, खिलौनों का मेला, डाक बाबू का प्यार, मुनमुनलाल ने बनाई घड़ी, झटपट सिंह, मिठाईलाल, हवा दीदी का सर्कस।

प्रकाश मनु की कहानियों में शहरी वातावरण और शब्दावलियों का प्रयोग देखा जा सकता है। अपनी कहानियों को सहज स्वाभाविक बनाए रखने की दृष्टि से लेखक समाज में व्याप्त शब्दावलियों को ज्यों-का-त्यों सम्मिलित कर लेता है। इसीलिए हमें प्रकाश मनु की कहानियों में—सॉरी, मैम, मैडम, क्लास, प्रोग्राम, पिकनिक, कलर बॉक्स, आर्ट, पेन, पार्टी, मम्मी, पापा, पीरियड, इंटरवल, क्लास टीचर, बैग मेड इन इंग्लैंड, ब्लैक बोर्ड, इंटेलीजेंट, प्रिंसिपल आदि अंग्रेजी के शब्द-प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं। हमें ध्यान रखना होगा कि संवादों को सहज और स्वाभाविक बनाए रखने की दृष्टि से कहानीकार ने इन शब्दों का प्रयोग बहुत सोच-समझकर किया है। हालाँकि भाषा के शुद्धतावादी प्रयोग पर बल देने वाले विद्वानों को ऐसे प्रयोग खटक सकते हैं।

लेखक जब गाँव के समाज का चित्रण करता है तो उसके शब्द-प्रयोग ग्रामीण जनजीवन के अनरूप ही होते हैं। 'जमुना दादी' कहानी को हम उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। बिस्तर, चारपाइयाँ, पोटली, कनस्तर, बोरियाँ आदि शब्द ग्रामीण जनजीवन में सहज ही सुनने को मिल जाते हैं। बच्चों का अधिकांश समय बड़े-बुजुर्गों के संरक्षण में, अपनी आयु के दोस्तों में, विद्यालयी कक्षाओं में, खाने-पीने, खेलने घूमने आदि की गतिविधियों में ही व्यतीत होता है। कहानीकार ने बच्चों के इस मनोविज्ञान को बड़ी सूक्ष्मता से पकड़ा और कहानियों की रचना का केंद्रीय भाव बनाया है। अपने अध्ययन की व्यापकता और सहज-सरल शब्दों में बालोपयोगी सबक को समाहित कर कहानी रचने में प्रवीणता के कारण प्रकाश मनु की कहानियाँ बच्चों को आसानी से समझ में आ जाती हैं। इस संग्रह की कहानियों को उदाहरण के रूप में परखा जा सकता है।



(3) विष्णु प्रभाकर की चुनिंदा कहानियाँ

पृष्ठ: 68; *मूल्य*: रु. 90/-

विष्णु प्रभाकर की बाल कहानियाँ बड़े कैनवस और महत्तर मानव मूल्यों को ध्यान में रखते हुए रची गई हैं। विष्णु प्रभाकर ने जीवन के आठ दशक तक लगभग सभी विधाओं में भरपूर लेखन कार्य किया है। इस संग्रह में निम्नलिखित बाल कहानियाँ संकलित हैं—आजादी क्या है? न्याय, गोपाल की बुद्धि, जब दीदी भूत बनी, हीरे की पहचान, पाप का घड़ा, एक अनोखा दूत, कहीं कुछ नहीं बदला, सबसे सुंदर लड़की, जब मैंने झूठ बोला था।

बच्चों के लिए आजादी का अपना अलग ही अर्थ होता है। प्रायः माता-पिता, दादा-दादी, बड़े भाई-बहनों की देखरेख और निर्देशों के कारण बच्चे स्वयं को बँधा हुआ महसूस करते हैं। अतः वे आजादी से आशय इन सबके बंधन से मुक्ति और अपनी मनमर्जी का काम करते हुए जीना समझते हैं। कहानीकार ने 'आजादी क्या है?' कहानी में बच्चों को बड़ी ही सरल भाषा में आजादी का अर्थ समझाया हैं। आजादी के असल मायने क्या हैं यह भी कहानीकार ने बच्चों को समझाने की कोशिश भली-भाँति की है। "सोचने की आपको पूरी आजादी है, लेकिन दूसरों को दुःख देने की आजादी नहीं। आप दूसरों को दुःख देंगे तो वे भी आपको दुःख देने के लिए आजाद हैं। आप आजाद होना चाहते हैं, सुखी होना चाहते हैं, लेकिन आपके सुख से यदि आपके कुटुंब को, आपके पड़ोसी को, आपके मोहल्ले वालों को, नगर वालों को और देश वालों को दुःख पहुँचता है तो आप वह सुख पाने के अधिकारी नहीं हैं। आप वही सुख पाने के अधिकारी हैं, जिससे औरों को भी सुख मिले।"(पृ.9) इस प्रकार के सबक कहानियों में अनुस्यूत हैं जो बच्चों के लिए आजीवन पथ-प्रदर्शक की भूमिका अदा करते रहेंगे। गौरतलब है कि बेहतरीन रचनाएँ देश-कालातीत हो जाया करती हैं। विष्णु प्रभाकर की यह कहानी छह दशकों के बाद आज भी अपनी प्रासंगिकता को प्रमाणित करती है। साहित्य की सार्थकता यही है। यह सबक प्रत्येक राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के लिए उतना ही महत्त्व रखता है जितना हमारे देश के बच्चों (भावी नागरिकों) के लिए। "महज सुख पाने की सुविधा का नाम आजादी नहीं है। सच्ची आजादी वह है जो अपने सुख के साथ दूसरों के सुख का वैसा ही और उतना ही ध्यान रखती है। आजाद साहब, आप इंसान हैं। इंसान अकेला नहीं होता। उसके साथ कुटुंब है, समाज है, देश है। सबका आपस में संबंध है और इस संबंध का अर्थ होता है, बंधन। आजादी एक बंधन है, लेकिन एक प्यारा-सा बंधन-दूसरों को अपने समान समझने का बंधन।"(पृ.9) 1957-1977 तक की रचित कहानियों को इस संग्रह में उनकी महत्ता के आधार पर सम्मिलित किया गया है।



(4) अमर गोस्वामी की चुनिंदा बाल कहानियाँ

पृष्ठ: 72; *मूल्य*: रु. 95/-

एक ख्यातिलब्ध पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित अमर गोस्वामी (28-11-1945 - 28-06-2012) को बांग्ला के महत्त्वपूर्ण बाल साहित्य को हिंदी में लाने का श्रेय दिया जाता है। इस संग्रह में गोस्वामी जी द्वारा पिछले चार दशकों में रचित कहानियों को सम्मिलित किया गया है। संग्रह की कहानियों की रुचिकर और आकर्षक प्रस्तुति के लिए चित्रों का कुशल संयोजन भी संग्रह का सबल पक्ष है। मुंबई के जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स से कला स्नातक शशी शेट्ये ने कहानियों के विषयानुरूप खूबसूरत चित्र बनाए हैं। किताब की प्रस्तुति व साज-सज्जा बेहतरीन है। इस संग्रह में निम्नलिखित बाल-कहानियाँ संकलित हैं—जंगल की घड़ी, चुनमुन चींटे की सैर, जिद्दी पतंग,

...और चालाकी छुप न सकी, रसीले बोल, शेरसिंह का चश्मा, पेड़ों को मिली सजा, पिकनिक पर धमाल : सीटी का कमाल, भालू का घर, शादी में आई परी।

भाषा शिक्षण के सूत्रों को पकड़ती, सबक सिखाती कहानी है—रसीले बोल। सुनना, बोलना दो प्राथमिक कौशल हैं। बोलने-बोलने में भी अंतर होता है। हम जब किसी से कर्कश या कठोर स्वर में बात करते हैं तो विपरीत प्रतिक्रिया होती है और वहीं जब मीठे स्वर में बात करते हैं तो विपरीत व्यक्ति भी अनुकूल हो जाता है। यही 'रसीले बोल' कहानी का सबक है। जब हम बाल साहित्य के द्वारा बच्चों को सुनना-बोलना, पढ़ना-लिखना सिखाते हैं तो क्या और कैसे बोलना श्रेयस्कर है, इस पर भी ध्यान रखना उचित रहेगा। इस कहानी से बच्चों को मीठे बोल और कठोर बोल के हानि-लाभ समझ आएँगे। जब हम दूसरों को अपने जैसा समझते हैं तो उनसे कठोर भाषा या शब्दों की जगह मीठे बोल बोलना पसंद करते हैं। "उन्हें तुम्हारे आने से खुशी हो, दुःख न पहुँचे। उन्हें भी अपने जैसा ही समझो।" इसकी परिणति भी कहानी के आखिरी वाक्य में दिखाई पड़ती है—"जस्सासिंह ने अपने हाथ का पत्थर नीचे फेंक दिया।" अमर गोस्वामी अपनी कहानियों में बाल मनोविज्ञान पर अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं। यही इनकी कहानियों और इनके लेखन की बहुत बड़ी सफलता है। इसी में साहित्य की भी सफलता है।



(5) चित्रा मुद्गल की चुनिंदा बाल कहानियाँ

पृष्ठ : 80; *मूल्य* : रु. 105/-

हमारे समय की बहुचर्चित लेखिका के रूप में विख्यात चित्रा मुद्गल की दस कहानियों को इस संग्रह में सम्मिलित किया गया है। चित्रा मुद्गल साहित्य की अलग-अलग विधाओं में लिखने के साथ-साथ बाल साहित्य की रचना में भी लंबे समय से जुड़ी रही हैं। इस संग्रह में सम्मिलित इनकी रचनाएँ हैं—कुसंगति का फल, न्याय, सबक, अच्छे-बुरे, अन्न, सूझबूझ, भरोसा, काँच की किरच, असली अपराधी, पेड़ पर खरगोश आदि। जैसा मैंने आरंभ में कहा इस प्रकार साहित्य के बहाने भी हम स्वतंत्रता की सामग्री खोज लाते हैं। और इन्हीं सामग्रियों के बल पर हम बालपन से ही बच्चों में जीवनोपयोगी मूल्यों को उन्हें सिखाने की कोशिश करते रहते हैं। सत्संग और कुसंगति का फल बताते हुए लेखिका की एक रचना 'कुसंगति का फल' इस संग्रह की प्रमुख कहानियों में है। लेखिका की भाषा-शैली विषयानुकूल है। प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल शब्दावलियों का चयन रचनाओं को जीवंतता प्रदान करती हैं। छात्र-छात्राओं की सुविधा के लिए छोटे-छोटे और सहज-सरल वाक्यों का प्रयोग सायास है। ग्रामीण जीवन की दृष्टि से देखा जाए तो महानगरीय जीवन में रह रही लेखिका ने गाँव के जीवन और बाल मनोविज्ञान पर अपनी पकड़ बनाते हुए अधिकारपूर्वक लिखा है। यह चित्रा मुद्गल के लेखन की विशेषता है। संग्रह में 'अन्न' कहानी द्वारा बच्चों को अन्न की महत्ता से परिचित कराया गया है। अकसर बच्चे खाने के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं। माता-पिता को भी बच्चों के भोजन में अन्न के साथ फल आदि का भी समावेश करने का संदेश लेखिका ने दिया है। हम सब इस कहानी से अन्न और भोजन के प्रति बच्चों की उपेक्षा-भावना को दुरूस्त कर सकते हैं। इस संग्रह में अतुल श्रीवास्तव के द्वारा प्रस्तुत चित्र कहानियों की रोचकता और खूबसूरती को बढ़ाने में समर्थ हैं।



(6) हरिकृष्ण देवसरे की चुनिंदा बाल कहानियाँ

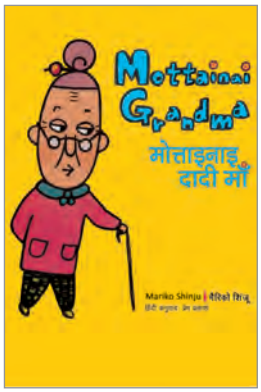
पृष्ठ : 72; *मूल्य* : रु. 115/-

बाल साहित्यकार के रूप में ख्यातिलब्ध हरिकृष्ण देवसरे की चुनिंदा कहानियों का यह संग्रह राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत ने पहली बार सन् 2013 में प्रकाशित किया था। पाठकों के बीच लोकप्रियता और माँग के कारण 2017 में इसका पुनः प्रकाशन किया गया है। इस संग्रह में कुल 15 कहानियाँ इस प्रकार हैं—साहसी रतन, अक्ल बड़ी या भैंस, थिरकते फूल, घंटियाँ, बंदर का कलेजा, सीख न दूँगा बानरा, बेगुनाह पेड़ों की हत्या, दीनू काका, घुन, पुरस्कार, अवसर, सवाल का जवाब, पापा, मम्मी को मत मारो, मैं पढ़ नहीं सका, पॉटर चिप्स।

हमारे भारतीय परिवारों में औरतों को जो घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है और बच्चों पर इसका क्या असर पड़ता है, इसी कोण से संग्रह की एक कहानी है—पापा, मम्मी को मत मारो। इस कहानी में जो बच्चा है—अजय, वह पाँचवीं में पढ़ता है। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अजय की आयु 10-11 वर्ष होगी। इस आयु में बच्चों पर घरेलु हिंसा का क्या प्रभाव पड़ता है, यह हम कहानी में देख सकते है। बच्चों के साथ-साथ आम भारतीय माता-पिता के लिए भी यह एक प्रेरक कहानी है।

बच्चों के मनोविज्ञान को समझे बगैर हम उनकी जरूरतों को नहीं समझ सकते। इसलिए कहानी लिखने और बाल कहानी या बाल साहित्य लिखने में अंतर होता है। बाल साहित्य के लिए संवेदना के अलग धरातल की जरूरत होती है। अनुभूति की संवेदना के धरातल के साथ-साथ यहाँ अभिव्यक्ति के स्वरूप पर भी विशेष सजगता अनिवार्य है। इस दृष्टि से बाल साहित्य रचना मुश्किल कार्य है, किंतु समाज की विरासत को आगे बढ़ाने का काम आज के बालक-बालिकाओं को ही विशेष रूप से करना है। आज का बालक ही भावी भारत का स्वरूप रचेगा। इसलिए इनको बेहतर शिक्षा देने की दृष्टि से उपयुक्त बाल साहित्य की अनिवार्यता स्वतः प्रमाणित है।

यह संतोष और आश्वस्ति का विषय है कि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में बाल साहित्य की जरूरतों को लेकर सदा जागरूक रहा है। चुनिंदा बाल साहित्यकारों के उपर्युक्त संग्रहों के अतिरिक्त भी अनेक बालोपयोगी प्रकाशन सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी हैं।



'स्वच्छता' की ओर न्यास के बढ़ते पुस्तकीय कदम

समीक्षक : **दीपक मंजुल**

लेखिका : **मारिको शिंज्यु**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 36

मूल्य : रु. 100/-

आज जबकि देश में स्वच्छता और पर्यावरण संरक्षण को लेकर जनचेतना और जागरूकता की लहर आई हुई है, ऐसे में देश को पुस्तक के माध्यम से इस अवधारणा को आम लोगों तक पहुँचाने के लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत भी अपने स्तर से और अपने तरीके से सन्नद्ध और वचनबद्ध है। अपने इसी उपक्रम में न्यास ने हाल ही में जापान के कोदांशा लिमिटेड, टोक्यो के साथ एक अनुबंध के अंतर्गत, मोत्ताइनाइ शृंखला में स्वच्छता पर आधारित पुस्तक प्रकाशन की दिशा में एक अभिनव और महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है। विदित हो कि जापानी प्रकाशक, कोदांशा लिमिटेड द्वारा 'मोत्ताइनाइ ग्रैंडमा' शीर्षक से सुश्री मारिको शिंज्यु लिखित पुस्तक को व्यापक सराहना मिल रही है। वर्ष 2004 में कोदांशा द्वारा मोत्ताइनाइ ग्रैंडमा सीरीज की पुस्तकों का प्रकाशन आरंभ किया गया था। वस्तुतः बच्चों की कई लोकप्रिय पत्रिकाओं और अखबारों ने मोत्ताइनाइ ग्रैंडमा को एक ऐसे किरदार के रूप में स्वीकृति दी, जो पर्यावरण संरक्षण से जुड़ी जीवनशैली को बढ़ावा देने में मदद करता है। सुश्री शिंज्यु ने वर्ष 2008 में 'मोत्ताइनाइ ग्रैंडमा' वर्ल्ड रिपोर्ट एक्जीबिशन की शुरुआत की। इसका उद्देश्य आज पृथ्वी पर किस तरह का पर्यावरण संकट है और इसका बच्चों पर क्या असर पड़ रहा है, इसका विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना था। शिंज्यु जैव विविधता को बढ़ावा देने के कार्य में भी काफी सक्रिय हैं। मोत्ताइनाइ शृंखला की ऐसी ही पहली द्विभाषी पुस्तक का न्यास द्वारा जनवरी 2018 में प्रकाशन किया गया जिसका लोकार्पण उसी माह में नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला के अवसर पर, मेला आयोजन स्थल प्रगति मैदान के विदेशी मंडप के खुले सभागार में लेखिका मारिको शिंज्यु तथा न्यास-अध्यक्ष प्रो. बल्देव भाई शर्मा एवं न्यास-निदेशक डॉ. रीता चौधरी की उपस्थिति में बड़ी संख्या में उपस्थित पुस्तक प्रेमियों के सामने किया गया था। अंग्रेजी और हिंदी में प्रकाशित इस पहली द्विभाषी पुस्तक के साथ न्यास की लगभग दस और भारतीय भाषाओं में इस पुस्तक का अंग्रेजी के साथ द्विभाषी रूप में प्रकाशन की योजना है।

वस्तुतः मोत्ताइनाइ एक ऐसा जापानी शब्द है, जो प्रकृति के दिए उपहारों या वे लोग, जो हमारे इस्तेमाल की चीजें बनाते हैं, उनके प्रति संवेदना के साथ विचार करता है। अंग्रेजी में मोत्ताइनाइ को समझना हो तो इसे 'वेस्ट' यानि बर्बाद के अभिप्राय और कुछ भी 'वेस्ट' न करने के संदेश के रूप में समझा जा सकता है। यह उस परिस्थिति की ओर भी संकेत है, जिसमें हमने अपने कई मूल्यों को या तो तिरोहित हो जाने दिया है या फिर उनका हम काफी असावधानी से पालन करते हैं।

वैसे, मोत्ताइनाइ एक ऐसा शब्द है जिसकी जापानी में भी बहुत आसानी से व्याख्या नहीं हो सकती है। खासतौर पर बच्चों के लिए तो इस शब्द का अर्थ समझ पाना और भी मुश्किल है। इसी कारण से इस सचित्र पुस्तक की अवधारणा का जन्म हुआ, जिसे लेखिका ने प्रकाशन के माध्यम से अंजाम दिया। यहाँ यह बताना उचित होगा कि मोत्ताइनाइ शब्द में सम्मान देने के भाव को काफी अहमियत दी गई है। यह बताना भी प्रासंगिक जान पड़ता है कि संयुक्त राष्ट्र को एक पर्यावरण हितैषी शब्द के रूप में मोत्ताइनाइ पद से परिचय नोबेल (शांति) पुरस्कार प्राप्त केनिया की प्रोफेसर वैंगारी मथाई ने कराया था। विदित हो कि न्यास आने वाले दिनों में मोत्ताइनाइ शृंखला की कुछ और पुस्तकों का प्रकाशन करने जा रहा है।

हिंदी बाल साहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान



समीक्षक : **डॉ. अनिल कुमार**

लेखिका : **डॉ. शकुन्तला कालरा**

प्रकाशक : शरारे प्रकाशन, जनकपुरी, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 428

मूल्य : रु. 750/-

'हिंदी बाल साहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान' अभी हाल ही में प्रकाशित वरिष्ठ बाल साहित्यकार डॉ. शकुन्तला कालरा की साक्षात्कार विधा पर एक महत्त्वपूर्ण बाल साहित्य की पुस्तक है। साक्षात्कार साहित्यकार के अवचेतन में झाँकने का कार्य करता है और फिर, हम सब वह भी जान लेते हैं जो अब तक अप्रकट था, जाना न था। साक्षात्कार रचनाकार को पाठक के समीप लाने का प्रयास करता है। पाठक यह महसूस करता है कि वह रचनाकार के

बिल्कुल रू-ब-रू बैठा संवाद कर रहा है और अपनी हर जिज्ञासा का समाधान पा रहा है।

डॉ. शकुन्तला कालरा जी ने साक्षात्कार विधा के इस महत्त्व एवं उपादेयता को जान-समझकर 'हिंदी बाल साहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान' पुस्तक की योजना को कार्यरूप दिया। इससे पूर्व 'बाल साहित्य विमर्श' पुस्तक (2010) में प्रकाशित हुई। इन्होंने साहित्यकारों के साक्षात्कार के रूप में साक्षात्कार विधा को बाल साहित्य में स्थापित ही कर दिया।

डॉ. कालरा बाल साहित्य की प्रतिबद्ध साहित्यकारा हैं। बाल साहित्य सृजन के साथ-साथ बाल साहित्य समीक्षा और बाल साहित्य के विषय में अनेक विद्वानों से साक्षात्कार के लिए, ये हिंदी साहित्य जगत में सुप्रसिद्ध हैं। 'हिंदी बाल साहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान' इनका बाल साहित्य की साक्षात्कार विधा से संबंधित अगली कड़ी यानि दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें लब्धप्रतिष्ठित मूर्धन्य उन बालसाहित्यकारों एवं पत्रकारों के साथ संवाद है जिनके अद्वितीय प्रदेय से हिंदी बाल साहित्य सरिता का पाट चौड़ा हुआ है और उसे विशेष पहचान मिली है। इन साक्षात्कारों में आप पाएँगे कि साक्षात्कार मात्र विशिष्ट बिंदुओं को लेकर किया गया वार्तालाप ही नहीं है, वरन् रचनाकार विशेष के परिवेश के साथ उसके व्यक्तित्व के बहुत से पहलुओं की झाँकी भी है। उनके कृतित्त्व, भाव, विचार और अनुभव आदि का प्रतिबिंब झलकता है। यानि ये रचनाकार के जीवन-दर्शन का दर्पण है। इस पुस्तक में अखिलेश श्रीवास्तव चमन, अश्वघोष, घमंडीलाल अग्रवाल, देवेंद्र मेवाड़ी, पद्मा चौगाँवकर, प्रताप सहगल, पंकज चतुर्वेदी, बालशौरि रेड्डी, बालस्वरूप राही, डॉ. मधु पंत, मनोहर वर्मा, योगेंद्र कुमार लल्ला, रत्नप्रकाश शील, रमाशंकर, रेनू चौहान, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी और विनायक सत्रह लब्धप्रतिष्ठित बाल साहित्यकारों व पत्रकारों के साक्षात्कार हैं। जो इनके बाल साहित्य की पृष्ठभूमि के साथ-साथ आज हमारे समय में बाल साहित्य की जटिलताओं, समस्याओं, चुनौतियों सहित संभावनाओं पर भी प्रकाश डालते हैं। पुस्तक का शीर्षक बड़ा ही सार्थक और समसामयिक है। साक्षात्कारकर्ता अपनी किन्हीं जिज्ञासाओं के वशीभूत साहित्यकार के पास जाता है और उनका समाधान स्वयं के साथ-साथ लेखक की मदद से निकालता है। इस संबंध में डॉ. कालरा जी के ही शब्दों को लेना उपयुक्त होगा कि—"भेंटकर्ता पहले लेखक की समस्त रचनाएँ पढ़ता है फिर पर्याप्त चिंतन-मनन के बाद उन्हें अच्छी तरह से खंगालता है। उनमें गहरे उतरता है। उनका मंथन करता है और इस पूरी प्रक्रिया से गुजरने के बाद ही प्रश्नावली तैयार करने में सक्षम हो पाता है। प्रश्नों के माध्यम से वह साक्षात्कारदाता को परत-दर-परत खोलता जाता है।..... इन साक्षात्कारों में आपको साहित्यकार के व्यक्तित्व-कृतित्त्व के साथ बाल साहित्य के स्वरूप, उसकी दशा और दिशा, उसका भविष्य, समसामयिक विषय और उसकी चुनौतियों पर भी विचार-विमर्श मिलेगा। बाल साहित्य से जुड़े ऐसे विचार-बिंदु मिलेंगे जो बाल साहित्यानुरागियों एवं बाल साहित्य के अध्येयताओं के साथ-साथ शोधार्थियों और अनुसंधित्सुओं के लिए अत्यंत लाभप्रद होंगे एवं भावी इतिहास-लेखकों के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे। यह उनके लिए अन्तर्साक्ष्य से जुड़ा एक प्रामाणिक दस्तावेज होगा।"

पुस्तक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है—पुस्तक के अंत में 'फलश्रुति' जिसके अंतर्गत इन साक्षात्कारों में अभिव्यक्त कतिपय मूल बिंदुओं को सहेजा गया है। वास्तव में, तमाम विद्वानों के साक्षात्कारों को पढ़ने के बाद यह तथ्य उभरकर आता है कि बाल साहित्य विमर्श का फलक विस्तृत हुआ है। बाल साहित्य की संभावनाओं और इसके विकास की बाधाओं को दूर किया जा सकता है। समय के साथ बाल साहित्य के कथ्य में भी परिवर्तन, परिवर्द्धन समय की मांग है। समग्रतः 'हिंदी बाल साहित्य : जिज्ञासाएँ और समाधान' पुस्तक में संकलित साक्षात्कार बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। साक्षात्कार लेना जितना आसान कार्य दिखता है, उतना है नहीं, बल्कि यह एक बड़ा ही दुरूह कार्य है। पहले संबंधित साहित्यकार के विषय में संपूर्ण जानकारी जुटाना, साहित्य पढ़ना, प्रश्नावली तैयार करना, समय लेना आदि सब बड़ा ही श्रम एवं समय साध्य है। इसके लिए डॉ. कालरा जी की जितनी प्रशंसा की जाए कम है। और अंत में, इन तमाम विद्वानों के साक्षात्कारों से एक बात यह निकलकर आती है कि बाल साहित्य आज नवीन युग, परिवेश के अनुरूप नवीन अनुभवों की अभिव्यक्ति की मांग कर रहा है।

भोलू भालू सुधर गया



समीक्षक : **रजनी भारद्वाज**
संपादक : **पवन चौहान**
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान।
पृष्ठ : 64
मूल्य : रु. 100/-

हम दादी-नानी से कहानियाँ सुनते-सुनते न जाने कब अच्छे-बुरे में अंतर करना सीखते हुए, जीवन मूल्यों से आत्मसात कर लेते हैं कि पता भी नहीं चलता। बालमन की कोरे कागज पर ये कहानियाँ इतनी बारीकी से उभरकर आती हैं कि ताउम्र इनकी छाप जीवन के हर पन्ने पर अंकित हो जाती है।

इसी कड़ी में कथाकार पवन चौहान का पहला बाल कहानी संग्रह 'भोलू भालू सुधर गया' आया है, जिसमें उन्होंने बालक के मन को छूने वाली 15 कहानियों को सहेजा है। इन कहानियों ने जहाँ एक ओर पनपते

भौतिकवाद में नैतिक मूल्यों को पुनर्जीवित किया है वहीं दूसरी ओर नव मानवीय मूल्यों की नींव भी रखी है।

कहानीकार ने अपनी कहानियों में अभिनव प्रयोग भी किए हैं और नन्हे-मुन्नों की सोच को पंख भी दिए हैं। सभी कहानियाँ मौलिक हैं और हमें हमारे आस-पास के परिवेश से परिचित कराती हैं। इनमें शेर है, चीता है, चिड़िया है, मछली है तो इनके गुणों, अवगुणों, चतुराई, समझ से अनेक समस्याओं के उत्तर भी खोजे गए हैं।

मछली और चूहों की दोस्ती की अनूठी मिसाल है, कहानी 'रानी मछली की सूझबूझ'। बिल्कुल नई सोच और नई ताजगी से भरी कहानी जिसमें दो भिन्न-भिन्न प्राणियों के बीच परस्पर सौहार्द और प्रेम को दर्शाया गया है।

ऐसे ही एक कहानी 'नए अंदाज में होली', आज के जनरेशन गैप को पुल की तरह पाटती नजर आती है वहीं 'गरीब लकड़हारा और शेर' कहानी पंचतंत्र की याद दिलाती हुई पराचर के रिश्तों और सौहार्द को दर्शाती है।

माता-पिता के लिए सुखद बयार की तरह है यह बाल कहानी संग्रह, जिसके द्वारा वे अपने बच्चों की उंगली थाम फिर से तितलियाँ पकड़ने निकल जाएँगे उम्मीदों के गाँव में।



समीक्षक : **गोविंद शर्मा**

लेखिका : **शशि श्रीवास्तव**

प्रकाशक : केबीएस प्रकाशन
दिल्ली-110007

पृष्ठ : 32

मूल्य : रु. 90/-

नन्हे कदम-ऊँची उड़ान

'नन्हे कदम ऊँची उड़ान' बालकथा संग्रह की लेखिका श्रीमती शशि श्रीवास्तव बाल साहित्यकार होने के साथ ही एक पत्रिका की संपादक, समाज सेवा क्षेत्र में सक्रिय एवं समारोह आयोजक हैं। इस कारण उनका अनुभव विशद है और इसका उपयोग उन्होंने बाल साहित्य रचना करने में किया है। वैसे उन्होंने बाल साहित्य रचना का श्रेय अपने बचपन की यादों, अनुभव आदि को दिया है। जैसा कि उन्होंने उक्त संग्रह की भूमिका में लिखा है—"मेरा बचपन काफी भीड़ भरे माहौल में गुजरा है। घर में आए दिन रिश्तेदारों का जमावड़ा लगा रहता था। उस भीड़-भाड़ के बीच भी हम भाई-बहनों में बाल साहित्य पढ़ने की होड़ रहती थी। छोटी कक्षा से ही, विद्यालय खुलने पर जब नई कक्षा की हमारी किताबें आतीं, तो हमारा जोश देखने लायक होता था। अन्य सभी कार्यों को छोड़कर जिन किताबों में कहानियाँ-कविताएँ होतीं उनको पढ़कर ही हम दम लेते थे। कई बार तो हम एक-एक कहानी कई-कई बार भी पढ़ते।

बच्चों ने हमेशा से ही मुझे प्रभावित किया है। उनकी मासूम शरारतें और चुलबुली बातें भी सदा मेरे आकर्षण के केंद्र में रही है। बचपन में भी इसी माहौल में अधिक समय गुजारने के कारण बच्चों की इच्छाओं, आकांक्षाओं और संवेदनाओं से भी भली प्रकार परिचित रही हूँ। संभवतः इसी कारण बच्चों को केंद्र में रखकर मेरे लेखन की शुरुआत हुई।"

संग्रह की अधिकांश कहानियाँ इसी माहौल की उपज लगती है। ऐसा लगता नहीं कि वे बच्चों से दूर बैठकर कल्पना करके लिखी गई है। संग्रह की कहानियाँ-लापरवाही की कीमत, पिंकी का पछतावा, मेहनत काम आई, असली दिवाली, बदरंग होली, सनकी, शैतानी से तौबा, सच्ची दोस्ती, पढ़ाई का मोल, अंधविश्वास को पढ़ें तो श्रीमती शशि श्रीवास्तव का कथन सही लगता है।

संग्रह की पहली कहानी 'लापरवाही की कीमत' में पक्षी प्रेमी टिंकू की लापरवाही यह रही कि वह दड़बे का दरवाजा बंद करना भूल गया और उसके कबूतर काल का ग्रास बन गए। लापरवाही की इससे बड़ी कीमत क्या हो सकती है। दड़बे का दरवाजा या घर का दरवाजा खुला नहीं छोड़ना चाहिए—यही सीख है इस कहानी में।

बच्चों को यदि घर के बड़े कोई बात कहते हैं तो यह उनके हित में ही होती है। बड़ों की बात न मानने पर पिंकी को पछताना पड़ा था। उसके पछताने में भी यही आभास होता है कि उसने बड़ों की बातों की अवहेलना न करना ही सीखा है।

कहानी 'मेहनत काम आई' में बड़ी सीख है कि जो हम चाहते हैं, उसे प्राप्त करने के लिये केवल प्रार्थना करना, दूसरों के भरोसे बैठे रहने से वह नहीं मिलेगा। हमें स्वयं आगे बढ़कर कुछ करना होगा। मंगल चाचा की प्रेरणा से खेलने के इच्छुक बच्चों ने पार्क में फैले कचरे को हटाया तो खेलने के लिये साफ-सुथरा मैदान मिल गया।

मोनी के अव्वल आने पर मोनू के मम्मी-पापा ने एक शानदार पार्टी की तो मोनू की समझ में आया कि पढ़ाई का भी मोल होता है। कहानी 'पढ़ाई का मोल' में अब तक का लापरवाह मोनू अचानक बदल गया और पढ़ने में पूरी रुचि लेने लगा। मोनी का प्रथम आना, पार्टी होना—इस सबने उसमें मोनी के प्रति ईर्ष्या नहीं भरी, बल्कि उसने प्रेरणा ही ली। 'असली दिवाली' हो या 'बदरंग होली' या 'सच्ची दोस्ती' सबमें कोई न कोई प्रेरणा मिलती है।

इसी तरह की एक कहानी है 'अंधविश्वास'। कहानी में बिना किसी की आस्था पर चोट किए वैज्ञानिक सोच अपनाने की सीख है। इधर उधर से बातें सुनकर शामू को विश्वास हो गया कि भूतप्रेत होते हैं। उसे समझाया गया कि भूतप्रेत नहीं होते तो उसने प्रश्न

किया—तब लोग उनकी बातें क्यों करते हैं? कहीं न कहीं होते ही होंगे? होते हैं, हमारे वहम में, हमारे अज्ञान में और अशिक्षा में। हमें कुछ हो जाए तो हम अशिक्षा, अज्ञान के कारण उसे भूतप्रेत का कारनामा मान लेते हैं। पर यदि हम सुशिक्षित हों तो असली कारणों का पता चल जाता है और भूतप्रेत का वहम मिट जाता है।

कोई भी बालकथा तभी संपूर्ण मानी जाती है जब उसमें बच्चे को कोई सीख और भरपूर मनोरंजन मिले। श्रीमती शशि श्रीवास्तव की कहानियाँ इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। कहा जाता है किसी कहानी में बच्चे को अफसोस करते, प्रायश्चित करते नहीं दिखाया जाना चाहिए। निसंदेह कुछ कहानियों में ऐसा लगता है पर उसमें भी कुछ सीखने की, आगे से ऐसी गलती न करने की प्रेरणा लेते बाल-पात्र दिखाई देते हैं। बालपाठक छोटे होते हैं, सभी कहानी उनकी तरह ही आकार में छोटी हैं।

चित्रों द्वारा सुसज्जित पुस्तक सुंदर लगती है। छपाई-सफाई सही है। पृष्ठ संख्या निसंदेह कम है। कुछ कहानियाँ और भी इसमें शामिल होनी चाहिए थी।



समीक्षक : **डॉ. शकुन्तला कालरा**
संपादक : **डॉ. नागेश पांडेय 'संजय'**
प्रकाशक : अनन्त प्रकाशन, लखनऊ।
पृष्ठ : 112
मूल्य : रु. 450/-

बाल साहित्य का शंखनाद

हिंदी बाल साहित्य के विशाल वटवृक्ष के सृजन-क्षेत्र में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, साक्षात्कार, यात्रा-वृत्तांत आदि विविध शाखाओं के साथ-साथ बाल साहित्य-आलोचना विधा भी अपनी पूरी गरिमा के साथ विकसित हो रही है। आलोचना बाल साहित्य की सही तस्वीर खींच कर अप्रत्यक्ष में बालक और बालमनोविज्ञान का विश्लेषण करती है। आलोचना रूपी गुलाब बाल साहित्य को महकाने में उसकी सहायता करती है। वह उसकी यथार्थ स्थिति का जायजा लेती है। बदलाव में सहायक सिद्ध होती है। नई दृष्टि के साथ युगानुरूप बाल साहित्य-लेखन की भूमिका आलोचना द्वारा ही निर्मित होगी। यह एक अच्छे आलोचक का काम है कि वह अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए उत्तम बाल साहित्य की कसौटी को उसके प्रतिमानों को व्याख्यायित करे। यह कार्य किया है बाल साहित्य के प्रतिष्ठित एवं चर्चित युवा आलोचक डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' ने। इस क्षेत्र में उनकी अब तक तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'बाल साहित्य के प्रतिमान', 'बाल साहित्य सृजन और समीक्षा' तथा 'बाल साहित्य का शंखनाद' आदि। इसके अतिरिक्त उनके छह दर्जन से अधिक स्वतंत्र आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

नागेश की सद्य प्रकाशित तीसरी पुस्तक 'बाल साहित्य का शंखनाद' है। आज बाल साहित्य में हुई आलोचना की प्रगति से नागेश संतुष्ट दिखाई देते हैं। इसी पुस्तक की भूमिका में उन्होंने इस सच्चाई को स्वीकार किया है कि आज बाल साहित्य में आलोचना विधा पर्याप्त समृद्ध हो चुकी है। उनका वक्तव्य है—"आज बाल साहित्य का आलोचना पक्ष बहुत सबल है। बहुत काम हो गया है। बहुत काम हो रहा है। आज का शोधार्थी बाल साहित्य पर काम करने के लिए भटकने जैसी स्थिति में नहीं है। विविध विषयों पर उत्कृष्ट सामग्री से युक्त महत्त्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध हैं। एक जमाना था, जब आलोचनात्मक सामग्री के अभाव में बाल साहित्य पर अनुसंधान की कल्पना ही दुष्कर थी। विश्वविद्यालय बमुश्किल इस विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान करते थे। आज तो बाल साहित्य पर संपन्न शोधों की संख्या ही दो सौ को पार कर चुकी है। प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ अब बाल साहित्य पर केंद्रित विशेषांक प्रकाशित करने में गौरव की अनुभूति कर रही हैं। निश्चय ही यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।"

'बाल साहित्य का शंखनाद' प्रस्तुत पुस्तक में आलोचना के अतिरिक्त कुछ बाल साहित्यकारों से जुड़े संस्मरणात्मक आलेख हैं। इस पुस्तक को उन्होंने दो भागों में विभक्त किया है 'अध्ययन' और 'अर्चन'। खंड एक यानि 'अध्ययन' के अंतर्गत बाल साहित्य के क्षेत्र की उपलब्धियों को रेखांकित किया है। बाल साहित्य के चिंतन-मनन से जुड़े नौ आलेख हैं। प्रथम आलेख 'बाल साहित्य का शंखनाद' है, जिसमें लेखक ने सृजन और आलोचना के साथ संपादन के क्षेत्र में हुए कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। हिंदी बाल साहित्य से जुड़े सरकारी और स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा दिए गए पुरस्कारों में हुए सुधारों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। विश्वविद्यालय, यू.जी.सी. द्वारा बाल साहित्य को महत्त्व देना, विश्व हिंदी-सम्मेलन में बाल साहित्य का विशेष सत्र रखना, वृहद बाल साहित्य के कोशों का संपादन आदि ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य हैं जिनके आधार पर लेखक ने कहा है कि आज बाल साहित्य का महायज्ञ जारी है और शंखनाद हो रहा है। दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ आलेख कहानियों से जुड़े हैं जिनमें कहानी के स्वरूप और विविध विषयों की कहानियों की चर्चा है। छठे आलेख 'बाल साहित्य में चित्रांकन' में चित्रों के महत्त्व को दर्शाते हुए इस सच्चाई को स्वीकार किया है कि—"एक कुशल लेखक, समर्थ प्रकाशक वरन् सजग चित्रकार की भी आवश्यकता सिद्ध होती है। तीनों के पारस्परिक समन्वय के बगैर प्रभावी बाल साहित्य का निर्माण असंभव है।" बाल साहित्य के विकास में 'लोक साहित्य का

प्रदेय' शीर्षक के विस्तृत आलेख में नागेश ने सामान्य साहित्य की भाँति बाल साहित्य का मूल स्रोत भी लोकसाहित्य को माना है। इसी कारण इसकी अद्भुत संपदा को बचाकर रखना आने वाली पीढ़ी की ईमानदार जिम्मेदारी है। 'बाल साहित्य अकादमी क्यों, कब और कहाँ?' एक अत्यंत संक्षिप्त आलेख है जिसमें लेखक ने सरकार से समस्त लेखकों की ओर से एक निवेदन प्रस्तुत किया है कि 'हिंदी बाल साहित्य अकादमी' बने जिसका मुख्यालय राजधानी में हो। इसमें हर भाषा के बाल साहित्य के जानकार लोग हों। इसका मूल लक्ष्य बाल साहित्य को हर बालक के हाथ में पहुँचाना हो। यहाँ विषय की दृष्टि से अनुपात में तारतम्य का अभाव मुझे थोड़ा खटकता है। पुस्तक में कहानी से जुड़े तो चार आलेख हैं किंतु अन्य विधाएँ बिल्कुल उपेक्षित रही हैं। यदि इस ओर सुधि विद्वान लेखक ध्यान देते तो पुस्तक की पूर्णता में निश्चय ही सहायता मिलती। अगले संस्करण में इसका संशोधन पुस्तक की उपयोगिता में वृद्धि करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

पुस्तक के दूसरे खंड में लेखक ने बाल साहित्य के कुछ दिवंगत उन बाल साहित्यकारों के साथ अपने संस्मरण सांझे किए हैं, जिनका बाल साहित्य-सृजन एवं आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ये बाल साहित्यकार हैं—नई सोच के धनी डॉ. देवसरे, बहुआयामी कृतित्व के स्वामी : जय प्रकाश भारती, बाल साहित्य के शिखर : डॉ. श्रीप्रसाद, बाल साहित्य के जादूगर डॉ. राष्ट्रबंधु, यादों की खिड़की से झाँकते मनोहर वर्मा। इनके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त के बालकाव्य तथा सीताराम गुप्त की बाल कविता का भी आलोचनात्मक विवेचन किया है। लेखक ने 'अर्चन' के इस खंड में बाल साहित्य के उत्थान की दिशा में तत्पर इन साहित्य साधकों के अवदान को रेखांकित करते हुए इनके कृतित्व को प्रेरणास्पद माना है। पुस्तक की भूमिका में नागेश लिखते हैं—"बालकों के लिए साहित्य की जरूरत को इन साधकों ने बड़ी ही गंभीरता से अनुभव किया और प्रण-प्राण से बाल साहित्य के उत्थान की दिशा में तत्पर रहे।"

आलोचना की इस पुस्तक में संकलित सभी आलेखों के विवेचन-विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि डॉ. नागेश एक अच्छे आलोचक हैं। मैथ्यू अर्नल्ड मानते हैं—"आलोचक का कर्त्तव्य है कि वह संसार के सर्वोच्च ज्ञान और सर्वोत्तम विचारों को जानें, उन्हें सोचें-समझें और फिर उनका सर्वत्र प्रचार करें।" यही कार्य नागेश ने अपने आलोचना-कर्म के द्वारा किया है। आलोचक के तीन गुण होने चाहिए—आलोचक पढ़े, समझे और वस्तुओं का यथार्थ रूप देखे। नागेश ने यह कार्य तटस्थ भाव से, पूर्वाग्रह से मुक्त रहकर किया है।

निष्कर्षतः सार संक्षेप यह है कि उनके आलेखों में अंवेषण की नई मौलिकता है। उसमें सतहीपन नहीं है, गंभीरता है। वह रूढ़िबद्ध नहीं ताजापन लिए है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि नागेश सृजनात्मक प्रतिभा-सम्पन्न भी हैं और उनमें आलोचनावृत्ति भी है। आलोचक वह सजग पाठक होता है जो रचना में निबद्ध संश्लिष्ट अनुभूति का आनंद स्वयं भी लेता है और दूसरों को प्रदान करने में भी उनकी सहायता करता है और यह कार्य नागेश ने बखूबी किया है। एक वाक्य में उनकी आलोचना में नयी तराश, अंवेषण की मौलिकता के साथ लेखकीय संवेदना भी विद्यमान है। बाल साहित्य के सुधि अध्येताओं और अनुसंधित्सुओं के लिए प्रस्तुत पुस्तक पूर्व की दो पुस्तकों की भाँति निश्चय ही उपादेय सिद्ध होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

बचपन एक समंदर



समीक्षक : **डॉ. वीरेंद्र आज़म**
संपादक : **कृष्ण शलभ**
प्रकाशक : नीरजा स्मृति बाल साहित्य न्यास, सहारनपुर, (उ.प्र.)
पृष्ठ : 730
मूल्य : रु. 750/-

बच्चों को लेकर काफी कुछ लिखा गया है, काफी कुछ रचा गया है। कहानियाँ भी और कविताएँ भी। बच्चों पर लिखा गया साहित्य बाल साहित्य की श्रेणी में रखा जाता है। बच्चों का अपना एक विराट संसार है। उसका कोई ओर-छोर नहीं है। बच्चा कब क्या सोचने लगे, क्या जिद्द करने लगे और अपनी तोतली जबान से कब क्या कह जाए, किसी भी चीज के बारे में उसकी जिज्ञासा कब उभर आए, इसका अनुमान कभी कोई नहीं लगा पाया। बच्चों की जिद्द, उनकी चंचल अनुभूतियों, उनका रोना-हँसना, खिलखिलाना, उनकी जिज्ञासाओं और बड़ों से मनुहार आदि भाव बोध को अनेक महाकवियों से लेकर मौजूदा दौर के सैकड़ों कवियों ने अपने शब्दों में गूँथकर कविता में उतारा है। यह बाल काव्य जहाँ अधिकांशतः संग्रहित हैं वहीं काफी कुछ इधर-उधर बिखरा भी पड़ा है।

बाल कविताओं और उसके इतिहास पर चिंतन-मंथन करते हुए यहाँ-वहाँ बिखरी कविताओं को संकलित करने की दिशा में एक पराक्रमी और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कृष्ण शलभ ने किया। वर्ष 2009, बाल साहित्य के लिए एक सुखद अहसास लेकर आया। कृष्ण शलभ ने अतीत से वर्तमान तक बाल साहित्य के रचनाकारों की 666 प्रतिनिधि बाल रचनाओं को 'बचपन एक समंदर' नाम से एक ही पुस्तक में न केवल संग्रहित किया बल्कि उन सब सवालों के जवाब भी देने की कोशिश की जिन्हें लेकर लंबी बहसें होती रही हैं। 'बचपन एक समंदर' को लेकर कृष्ण शलभ ने अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए पुस्तक की भूमिका में कहा भी है—"हिंदी बाल कविता में बच्चों को केंद्र में रखकर उन्नीसवीं सदी से इक्कीसवीं सदी तक के कालखंड में

असंख्य कविताएँ लिखी गईं। बेहद मीठी, चटक-मटक वाली जो बचपन की संजीवनी भी हैं, खिलौनें भी। 'बचपन एक समंदर' में इस समूची धारा से बाल कविताएँ संकलित कर यह संकलन प्रस्तुत है। इस संकलन के पीछे उद्देश्य यह रहा है कि एक ही स्थान पर संपूर्ण कालखंड की चर्चित और महत्त्वपूर्ण कविताएँ संकलित होकर पाठकों, शोधार्थियों और बच्चों तक पहुँचे।

'बचपन एक समंदर' में करीब जिन 295 रचनाकारों की 666 बाल कविताएँ संकलित की गई हैं, उनमें बाल काव्य की त्रयी-बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक और अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध से लेकर शिवांक और मोक्ष गौड़ तक, छोटी आयु के बाल कवियों की रचनाएँ भी शामिल की गई हैं। करीब 14 वर्ष के कठोर परिश्रम के बाद यह संकलन कृष्ण शलभ के श्रेष्ठ संपादन के साथ सामने आया।

'कौन है हिंदी बाल कविता का प्रथम दृष्टा'? यह विचार, चिंतन हमेशा होता रहा है। 'बचपन एक समंदर' की भूमिका में संपादक कृष्ण शलभ का कहना है कि कुछ जगनिक (1100-1200) के आल्हाखंड से, कुछ अमीर खुसरो (1283-1328) और कुछ महाकवि सूरदास (1478-1583) के कृष्णलीला पदों व तुलसीदास काव्य (1532-1623) से भी इसके प्रादुर्भाव के सूत्र जोड़ते हैं, पर 'आल्हा' में बाल कविता जैसा कुछ भी नहीं है। केवल बाल कविता के इतिहास को अधिकाधिक प्राचीन सिद्ध करने मात्र की भाव कल्पना के आधार पर उसके उद्भव का स्रोत ऐसे कालखंड में प्रस्थापित करने का प्रयास करना जहाँ हिंदी बाल कविता जैसी कोई चीज है ही नहीं, कदाचित उपयुक्त और सर्वमान्य नहीं होगा। जहाँ तक हिंदी के दूसरे कवि अमीर खुसरो का प्रश्न है, इन्होंने पहेलियाँ और मुकरियाँ लिखी हैं जो शताब्दियों से बच्चों का मनोरंजन करती आ रही हैं। उनमें कुछ बालोचित सरल भावनाओं की अनुरूपता है, लेकिन यह भी सत्य है कि इनकी रचना कवि ने बच्चों को केंद्र में रखकर नहीं की है।

भक्तिकालीन कुछ कवियों ने अपने इष्टदेवों की भक्ति में तल्लीन होकर काव्य रचना की है। इनमें तुलसीदास जहाँ राम और उनके भाइयों के बाल रूप का वर्णन करते हैं वहीं सूरदास ने भी कृष्ण के शिशु जीवन को आधार बनाकर जो पद रचे हैं वे बालकों के लिए नहीं बल्कि भक्तों को रिझाने के लिए लिखे गए हैं। इस संबंध में हिंदी बाल कविता के इतिहास लेखक प्रकाश मनु का कथन उद्धृत किया गया है—"यों तो हिंदी बाल कविता के शुरुआती पगचिह्न बीसवीं सदी की शुरुआत से ही नजर आने लगते हैं और कुछ लोग इससे भी पहले भारतेंदु या फिर सूर के वात्सल्य वर्णन में हिंदी की बाल कविता का उत्स देखते हैं।.....पर जहाँ तक आधुनिक हिंदी बाल कविता की संभावनाभरी शुरुआत और उसकी प्रवाहमान परंपरा की बात है, तो वह हम मोटे तौर से बीसवीं सदी के प्रारंभ से मान सकते हैं।" इसके अतिरिक्त संपादक कृष्ण शलभ ने 'बचपन एक समंदर' में लोकगीतों के गलियारे से होकर निकली बाल कविताओं पर अनेक उदाहरण के साथ यह साबित किया है कि बाल कविता का एक स्रोत लोकधर्मी बाल गीत भी है।

उक्त संकलन में शलभ ने इस बात पर भी चिंता जताई है कि अनेक कवियों एवं संपादकों द्वारा पुरानी सब परंपराओं की अनदेखी कर छंद के विभिन्न रुपों वाली रचनाओं को बालगीत का नाम दे दिया गया। ऐसी रचनाएँ, जिनका बालगीत से दूर-दूर का कोई नाता नहीं है उन्हें भी बालगीत कहा जाने लगा, जबकि कविता और गीत का शैल्पिक ढाँचा (फॉरमेट) अलग-अलग है। गीत का केंद्रिय भाव उसके मुखड़े में केंद्रित होता है और संपूर्ण गीत में उसी केंद्रिय भाव को भिन्न-भिन्न प्रयोगों से विस्तार दिया जाता है।

बाल कविता की संपूर्ण यात्रा को प्रारंभ से समझने के लिए कालखंड के निर्धारण पर कृष्ण शलभ, प्रकाश मनु की पुस्तक 'हिंदी बाल कविता का इतिहास' में किए गए वर्गीकरण पर लगभग सहमति जताते हैं। इसे वह तीन भागों में बाँटते हैं। पहला—प्रारंभिक युग, दूसरा—गौरव युग और तीसरा—विकास युग। प्रारंभिक युग में 19वीं शताब्दी में बाल कविता के उत्स से लेकर 1947 तक का युग रखा गया है। इस कालखंड में मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, निरंकारदेव सेवक और द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी सहित अनेक कवियों और उनकी कविताओं का उल्लेख करते हुए समीक्षात्मक टिप्पणी की गई है। निरंकारदेव सेवक को हिंदी बाल कविता के भीष्म पितामह की संज्ञा देते हुए शलभ कहते हैं कि उनके बिना हिंदी बाल कविता का मुकम्मल चेहरा ही नहीं बनता। इसी कालखंड में महावीर प्रसाद द्विवेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, रामनरेश त्रिपाठी, बालमुकुंद गुप्त, गोपालसिंह नेपाली व माखनलाल चतुर्वेदी का जिक्र किया गया है।

गौरवयुग में 1947 से 1980 तक का कालखंड रखा गया है। इस दौर में बाल कविता के परिदृश्य पर कवि दामोदर अग्रवाल, सूर्यभानु गुप्त और शेरजंग गर्ग को एक विशिष्ट त्रयी की संज्ञा दी गई है। इसके अलावा 'बालभारती', 'पराग', 'नंदन', 'बालजगत', 'नन्हीं दुनिया' आदि पत्रिकाओं का उल्लेख है। शलभ के शब्दों में—"इस युग को गौरव युग कहने का अभिप्राय केवल इतना है कि इस दौर की बाल कविता में रचनाकार जिस ऊर्जा और संभावना से परिपूर्ण नजर आते हैं, इससे पहले और बाद में ऐसा दिखाई नहीं दिया।" हिंदी बाल कविता की एकरसता को तोड़ने और हास्य की गुदगुदी से जोड़ने वाले तीन कवियों उमाकांत मालवीय, योगेंद्र कुमार लल्ला व कन्हैयालाल मत्त का भी विस्तार से उल्लेख किया गया है। इसी कालखंड में डॉ. श्रीप्रसाद, बालस्वरूप राही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रयाग शुक्ल, भवानी प्रसाद मिश्र, चिरंजीत, और प्रभाकर माचवे सहित दर्जनों कवियों का उल्लेख है। तीसरे विकास युग में 1980 से आगे का कालखंड रखा गया है। इसमें इतने कवि शामिल हुए हैं कि उन पर

अलग से एक किताब लिखी जा सकती है। इस समय की कविताओं में समय की आहटें सुनाई देती हैं। इस काल के कवियों में कृष्ण शलभ, प्रकाश मनु, दिविक रमेश, सूर्य कुमार पांडेय, रमेश तैलंग, भैरुलाल गर्ग, गोपालदास नीरज, योगेंद्र दत्त शर्मा, सफदर हाशमी, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, रामअवतार त्यागी, अश्वघोष, यश मालवीय व रमेश कौशिक आदि का उल्लेख है। बाल साहित्य सृजन और संपादन के क्षेत्र में प्राण-प्रण से समर्पित कृष्ण शलभ गत 31 अक्तूबर, 2017 को एक दुर्घटना में घायल होकर अपनी अंतिम यात्रा पर चले गए, लेकिन उनके द्वारा संकलित और संपादित 'बचपन एक समंदर' हिंदी बाल साहित्य आकाश का एक ऐसा जाज्वल्यमान् नक्षत्र है जिसके आलोक में बाल काव्य जगत युगों-युगों तक आलोकित होता रहेगा। शलभ को सादर नमन!

बेलगाम घोड़ा व अन्य कहानियाँ



समीक्षक : **डॉ. जाकिर अली 'रजनीश'**

लेखक : **पंकज चतुर्वेदी**

प्रकाशक : शरारे प्रकाशन, नई दिल्ली

पृष्ठ : 60

मूल्य : रु. 100/-

गुल्लू का गाँव



समीक्षक : **डॉ. जाकिर अली 'रजनीश'**

लेखक : **डॉ. प्रदीप शुक्ल**

प्रकाशक : उत्तरायण प्रकाशन, लखनऊ-206012

पृष्ठ : 120

मूल्य : रु. 200/-

एलियन प्लैनेट



समीक्षक : **डॉ. जाकिर अली 'रजनीश'**

लेखक : **डॉ. मोहम्मद अरशद खान**

प्रकाशक : यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली-110032

पृष्ठ : 92

मूल्य : रु. 250/-

डॉ. देवसरे पुरस्कार से सम्मानित पुस्तकें

अभी ज्यादा अर्सा नहीं हुआ, जब बच्चों को 'ठोंक-पीट' और 'डाँट-डपट' कर 'आज्ञाकारी बालक' बनाना परिवार का प्रथम कर्तव्य समझा जाता था। सामंती विचारधारा में निमग्न उस तत्कालीन समाज में अगर बच्चों के लिए साहित्य के नाम पर कुछ था, तो सिर्फ धार्मिक नीतिकथाएँ और उपदेशात्मक लोक कथाएँ, लेकिन जैसे-जैसे समाज में आधुनिकताबोध का प्रसार हुआ, वैसे-वैसे न सिर्फ बच्चों के स्वतंत्र अस्तित्व को प्रबुद्धजनों ने स्वीकारा, वरन् उनके लिए आधुनिक एवं वैज्ञानिक मूल्य-बोध से सम्पन्न साहित्य की आवश्यकता भी महसूस हुई। 'पराग' के नेतृत्व में प्रारंभ हुए इस वैचारिक आह्वान को आंदोलन का रूप देने में डॉ. हरिकृष्ण देवसरे का प्रमुख योगदान है। डॉ. हरिकृष्ण देवसरे ने धर्म और संस्कृति के नाम पर बच्चों को परोसी जा रही जादू-टोने, तंत्र-मंत्र और परीकथाओं की प्रासंगिकता पर तर्कपूर्ण ढंग से सवाल उठाए और बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास पर बल दिया। इस क्रम में उन्होंने स्वयं भी बच्चों के लिए स्तरीय साहित्य का सृजन किया और समकालीन रचनाकारों को भी इसके लिए प्रेरित किया।

डॉ. देवसरे के इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में उनके परिजनों द्वारा स्थापित हरिकृष्ण देवसरे बाल साहित्य ट्रस्ट भी महती भूमिका निभा रहा है। अपने इस गुरुतर उद्देश्य की पूर्ति के लिए ट्रस्ट 2014 से नियमित रूप से एक वार्षिक प्रतियोगिता का आयोजन करता है, जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने वाली वर्ष की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक को 75 हजार रुपये का पुरस्कार प्रदान किया जाता है। बाल साहित्य के सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुरस्कार के रूप में चर्चित देवसरे पुरस्कार वर्ष 2014 के लिए 'गणित का जादू' (डॉ. जाकिर अली 'रजनीश'), 2015 के लिए 'बालकृष्ण गर्ग के बालगीत' (बालकृष्ण गर्ग), 2016 के लिए 'बेलगाम घोड़ा' (पंकज चतुर्वेदी) एवं 'गुल्लू का गाँव' (डॉ. प्रदीप शुक्ल) व 2017 के लिए 'एलियन प्लैनेट' (डॉ. मोहम्मद अरशद खान) पुस्तकों को प्राप्त हुआ है।

अगर हम हाल के वर्षों में चर्चित पुस्तकों की चर्चा करें, तो उनमें पंकज चतुर्वेदी का बालकहानी संग्रह 'बेलगाम घोड़ा', डॉ. प्रदीप शुक्ल का बालकविता संग्रह 'गुल्लू का गाँव' व डॉ. मोहम्मद अरशद खान का बाल कहानी संग्रह 'एलियन प्लैनेट' काफी चर्चित रहे हैं। यूँ

तो ये पुस्तकें अलग-अलग तेवर व कलेवर में रची गई हैं, पर एक चीज ऐसी भी है, जो इन तीनों पुस्तकों को एक सूत्र में पिरोती है, और वह है इन रचनाओं में पगा हुआ आधुनिकताबोध।

जाने-माने पत्रकार पंकज चतुर्वेदी द्वारा रचित संग्रह 'बेलगाम घोड़ा' बाल कहानियों की दुनिया में हवा के एक ताजे झोंके का एहसास कराता है। इस संग्रह में कुल 8 कहानियाँ हैं। संग्रह की पहली कहानी 'बेलगाम घोड़ा' एक गोदाम में जमा कबाड़ हो चुके कंप्यूटरों और उनमें अंगड़ाई ले रहे कंप्यूटर वायरसों पर केंद्रित एक साइंस फैंटेसी है। घटनाक्रम का विकास, शब्दों का चयन, भाषाई चमत्कार सभी कुछ इतना सधा हुआ है कि पाठक चमत्कृत हुए बिना नहीं रह सकता। कहानी न सिर्फ विषय की मौलिकता, जबरदस्त शब्दिक संरचना के कारण पठनीयता के नए आयाम रचती है, वरन् अपनी प्रभावोत्पादकता के कारण भी पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती है।

'और शेर भाग गया' संग्रह की एक बेहद मनोरंजक कहानी है, जिसमें बेहद सजगता के साथ जंगल में प्रजातंत्र का प्रवेश और उसके साइड इफेक्ट्स को दर्शाया गया है। यह एक बेहद पठनीय कहानी है, जिससे गुजरते हुए पाठक को परीकथाओं का सा एहसास होता है। इसी तरह 'कुछ तो नया है' में महानगरों के चौराहों पर खिलौने बेचने वाले बच्चों और उनके परिवार को केंद्र में रखा गया है। यह कहानी हमारे सभ्य समाज का एक कड़वा सच है, जो हमें कुछ देर रुक कर सोचने के लिए भी विवश करती है।

'परी फिर आएगी' संग्रह की एक अन्य कहानी है। यह कहानी एक ओर पर्यावरण और युद्ध की विभीषिका को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करती है, तो दूसरी ओर 'परीकथाओं' को सामाजिक यथार्थ से जोड़कर ऐसा आभामंडल रचती है कि पाठक उसके प्रभाव में खोने से स्वयं को रोक नहीं पाता। ऐसी शानदार कहानियों के लिए लेखक की जितनी भी तारीफ की जाए कम है।

'गुल्लू का गाँव' डॉ. प्रदीप शुक्ल का बाल कविता संग्रह है। डॉ. शुक्ल बाल साहित्य के नवोदित हस्ताक्षर हैं, पर उनकी लेखनी में ऐसी रवानी है कि बड़े-बड़े कवि रश्क कर बैठें। डॉ. शुक्ल पेशे से डॉक्टर हैं, पर छंदों और शब्दों पर ऐसा अधिपत्य कि पाठक झूमने के लिए विवश हो जाता है। दो उदाहरण यहाँ पर दृष्टव्य हैं—

दौड़ रही मुन्ना की गाड़ी घुर्रम-घुर्रम-घर्र।
लिए नगाड़ा मुन्नी पीछे कुर्रम-कुर्रम-कुर्र।
दौड़ रहा वह पूरे घर में पहने केवल चड्ढी,
उसके आगे से हट जाओ बहुत तेज है गड्डी,
थककर दादी बैठ गई हैं मचिया बोली, चर्र!
अच्छा होता चाँद हमारे घर के ऊपर होता,
कभी-कभी रातों में उसका हाथ पकड़कर सोता।
आसमान की सारी बातें वह मुझको बतलाता,
रूठ गए तारों के किस्से गाकर मुझे सुनाता।

संग्रह में कुल जमा 51 कविताएँ संकलित हैं, पर इन कविताओं में दुनिया जहान के तमाम रंग देखे जा सकते हैं। इस संग्रह में गाँव है, खेत हैं, तितली है, पिल्ला है, धूप है, कंप्यूटर है, चिड़िया है, गूगल है, महानगर है, ...मोटे-मोटे शब्दों में कहें तो वह सब कुछ, जो बच्चों से जुड़ा हो सकता है।

'गुल्लू का गाँव' अठखेलियाँ करती हुई नदी के समान है, जो पाठक को कब अपने साथ बहाकर आनंदलोक में पहुँचा देती है, पता ही नहीं चलता। ये कविताएँ खिलखिलाती हैं, गुदगुदाती हैं और बात-बात में दुनिया-जहान की सैर करा लाती हैं। और यही कारण है कि ये हर किसी को पसंद आती हैं।

'एलियन प्लैनेट' डॉ. मोहम्मद अरशद खान की 21 बाल कहानियों का संग्रह है। मोहम्मद अरशद खान बाल मनोविज्ञान के कुशल चितेरे हैं। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को भी कहानी में ढालने में माहिर हैं। उनके पात्र हमारे आसपास के परिवेश से उठाए गए वे बच्चे हैं, जिनमें बचपन कूट-कूट कर भरा है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ न सिर्फ रोचक होती हैं, वरन् इतनी मौलिक और अनूठी कि पाठक अपनी सुध-बुध खोने के लिए विवश हो जाता है। आलोच्य संग्रह को अगर गहराई से देखें तो इसमें तीन प्रकार की कहानियाँ हैं। पहली कहानियाँ वे हैं, जहाँ पर बच्चों का बचपन उन्मुक्त उड़ान भरता हुआ नजर आता है। ऐसी कहानियों में एलियन प्लैनेट, डिटेक्टिव रानी, चाचू लौट आए, ईश्वर, सिम्मी को सब याद है, फिर कब होंगी छुट्टियाँ, जन्मदिन पर, हवा का रंग शामिल हैं। इन कहानियों से गुजरते हुए बालमन की निश्छलता पाठक का मोह लेती है। दूसरी तरह की कहानियाँ वे हैं, जिनमें यथार्थ के साथ-साथ बेहद सूक्ष्म रूप में आदर्श के भाव निहित हैं जैसे—मूँछवाला वॉचमैन, चिड़चिड़ी चाय चाची, प्यार की जीत, कहीं ऐसा न हो, गुम हो गई बॉटल, तेरी साइकिल स्लो है क्या, खुशियों की कुंजी, भगवान कसम और जगमग-जगमग दीप जले। संग्रह में तीसरी तरह की कहानियाँ वे हैं जो बच्चों में ओज और साहस का संचार करती हैं, जैसे रोहित की चित्रकारी, बिन्नू बहादुर जिंदाबाद और पकड़ो-पकड़ो चोर-चोर!

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि 'एलियन प्लैनेट' आधुनिक बालकथाओं का ऐसा गुलदस्ता है, जो बच्चों के आज की बात करता है। बिना किसी उपदेश और नैतिक शिक्षा के यह संग्रह न सिर्फ पाठकों का मनोरंजन करता है, वरन् उन्हें समाज को सुंदर और सभ्य बनाने के लिए परोक्ष रूप से प्रेरित भी करता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि बच्चों को गिफ्ट में देने के लिए यह एक आदर्श उपहार हो सकता है।

इस तरह आलोच्य तीन पुस्तकों के बहाने हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान बाल साहित्य बच्चों के ज्यादा करीब है। यह बच्चों के मन की बात करता है, उनका मनोरंजन करता है और साथ ही साथ उनकी समझ का वैज्ञानिक ढंग से परिष्कार भी करता है। यही कारण है कि ऐसा साहित्य पाठकों के दिलों में तो जगह बनाता ही है, समीक्षकों व आलोचकों का भी प्यार-दुलार पाता है।

पुस्तकें मिलीं



श्रमेव जयते

पंकज के. सिंह

श्रम को सम्मान दिए बिना कोई भी समाज या राष्ट्र विकसित और सक्षम नहीं हो सकता। भारत के पास विशाल जनसंख्या अवश्य है, किंतु आर्थिक विकास की दृष्टि से देश को जनसांख्यिकीय लाभांश स्वतः ही मिलने शुरू नहीं हो जाएँगे। इसके लिए योजनाबद्ध ढंग से देश की जनसंख्या को कौशलयुक्त और शिक्षित-प्रशिक्षित बनाना होगा। 'श्रमेव जयते' पुस्तक भारतीय श्रम शक्ति के कौशलयुक्त बनने और देश के आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सकने की संभावनाओं की एक विवेचना है।

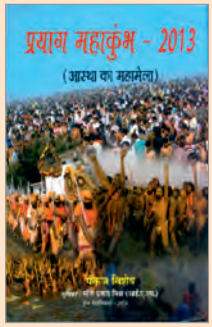
डायमंड पॉकेट बुक्स,
नई दिल्ली

पृ. 160; रु. 150.00

प्रयाग महाकुंभ-2013

(आस्था का महामेला)

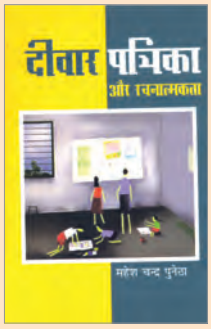
पंकज विशेष



कुंभ मेला उच्च स्तर की आस्था वाला आध्यात्मिक मेला है। इस मेले के आयोजन की परंपरा हज़ारों साल से चली आ रही है। इस पर्व पर भारी संख्या में लोग मेले में पहुँचते हैं। यह एक प्रकार का धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना का मेला है। प्रयाग महाकुंभ - 2013, कुंभ महापर्व की विस्तृत जानकारी देने वाली एक उपयोगी पुस्तक है। पुस्तक में दी गई महाकुंभ की वास्तविक रंगीन तस्वीरों के माध्यम से पाठक कुंभस्थल पर तरह-तरह की वेशभूषा, खान-पान वाले न केवल भारतीयों को ही बल्कि विदेशियों को भी मेले का भरपूर आनंद लेते देख सकते हैं। जो भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता के दर्शन कराती हैं।

प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली

पृ. 72; रु. 195.00



दीवार पत्रिका और रचनात्मकता

महेश चन्द्र पुनेठा

दीवार पत्रिका अपने विचारों व भावनाओं को अभिव्यक्ति देने, नई जानकारियों तथा सूचनाओं को संप्रेषित करने और आपसी संवाद का एक सषक्त और सस्ता माध्यम है। बहुत लंबे समय से इसका प्रयोग होता आ रहा है और बच्चों की रचनात्मकता को एक कारगर मंच प्रदान करने तथा उनमें नया आत्मविश्वास भरने की क्षमता को दीवार पत्रिका साबित कर चुकी है। इस पुस्तक में लेखक ने दीवार पत्रिका के साथ अपने अनुभव तथा साथ ही, स्कूल के बच्चों, संपादकों, शिक्षक साथियों के अनुभवों को भी साझा किया है। इसमें विभिन्न विषयों यथा- क्या है दीवार पत्रिका, इस पत्रिका की आवश्यकता क्यों है, इसका निर्माण किस प्रकार किया जाता है, तथा इसके निर्माण में किन-किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है आदि का वर्णन किया गया है। यह पुस्तक उन सभी के लिए है जो बच्चों की रचनाशीलता को बढ़ाने में पूरी प्रतिबद्धता से लगे हैं।

लेखक मंच प्रकाशन,
गाजियाबाद

पृ. 110; रु. 80.00



और सिर्फ तितली

प्रदीप सौरभ

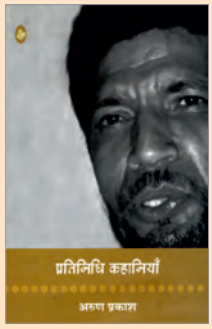
'और सिर्फ तितली' उपन्यास पब्लिक स्कूली शिक्षा की भीतरी परतों को एक-एक कर खोलते हुए, पब्लिक स्कूली शिक्षा जगत को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। उपन्यास की नायिका है 'तान्या मैम'। एक बेटी, बहन, सखी और शिक्षिका के विभिन्न रूपों को तान्या मैम का पात्र प्रस्तुत करता है। लेकिन इन सबके बीच उपन्यास के कथानक में उनका मुख्य व्यक्तित्व शिक्षिका के रूप में उभरकर आता है। कथा की पृष्ठभूमि दिल्ली जैसे महानगर और बिहार से होकर पाठकों को सिंगापुर जैसे वैश्विक देशों तक की सैर करा लाती है। लेखक की बेबाक शैली इस रचना का शक्तिबिंदु है।

वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 174; रु. 250.00

प्रतिनिधि कहानियाँ

अरुण प्रकाश



भैया एक्सप्रेस, बेला एक्का लौट रही हैं, जल-प्रान्तर, मँझधार किनारे, बहुत अच्छी लड़की, विषम राग, अथ मिस टपना कथा, गज पुराण नामक आठ कहानियों का यह संग्रह पाठकों को उपभोक्ता नहीं, सहभोक्ता; श्रोता नहीं, संवादक बनने के अवसर देता है। ये कहानियाँ किसी एक शैली में नहीं बँधी हैं, बल्कि हर कहानी का अलग और स्वतंत्र व्यक्तित्व नई भाषा, नई संरचना और आंतरिक गतिशीलता के सहारे निर्मित किया गया है।

राजकमल प्रकाशन,
दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 152; रु. 195.00



प्रतिनिधि कहानियाँ

चित्रा मुद्गल

12 कहानियों के इस संग्रह में यह ध्यान रखा गया है कि लेखिका, चित्रा मुद्गल के लेखन के प्रत्येक दशक की उपस्थिति इनमें दर्ज हो सके तथा उनकी कथा-प्रवृत्तियों की झलक पाठकों को मिल सके। इनमें बदलते समय-समाज की आहटें हैं। परिवेश का अद्भुत चित्रण, भाषा की भंगिमा और सहज रूप से व्यक्त होते भाव इनकी विशेषता है। लेखिका जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों को चुनती हैं, उनमें व्याप्त तनाव परखती हैं, उन्हें सामाजिकता के व्यापक धरातल पर ला खड़ा करती हैं।

राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 156; रु. 195.00

चलती चक्की

सीतेश आलोक



समाज में फैली विषमताओं और मान्यताओं से संबंधित कुछ धारणाएँ बार-बार चर्चा का विषय बनकर लोगों के मन को उद्वेलित करती रहती हैं। गरीबी, महँगाई, दहेज, बेईमानी, सामाजिक विकृतियाँ आदि कुछ विषय हैं जो दशकों से कानों पर हथौड़े की तरह बजते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में देश की इन्हीं अनेकानेक समस्याओं पर आधारित विभिन्न विश्लेषणात्मक लेख हैं जो समय-समय पर प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं।

मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली

पृ. 250; रु. 450.00



फिर लौटती जिंदगी

मान सिंह दीप

जीवन में इंसान सोचता कुछ और है लेकिन जीवन का बहाव उसे किस ओर ले जाये यह कोई नहीं जानता। इंसान अपने जीवन काल में बहुत सारी बातों और घटनाओं से प्रभावित होता है। वक्त बदलता है, लेकिन क्या वक्त के साथ-साथ रिश्ते नाते भी बदलते हैं? करीबी रिश्तों की उधेड़बुन और ज़िंदगी जीने की भरपूर चाह के बारीक रेशों को सुलझाता और उन्हें आपस में जोड़ता उपन्यास 'फिर लौटती ज़िंदगी', आपका ज़िंदगी के तमाम पहलुओं से परिचय करवाएगा।

डायमंड पॉकेट बुक्स,
ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली

पृ. 216; रु. 195.00

कहना जरूरी है

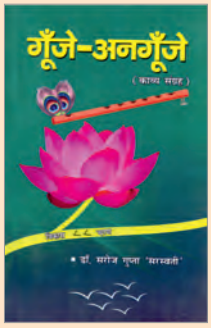
भरत प्रसाद

सूत्र वाक्यों में विचार देने की परंपरा बेहद पुरानी है। ऐसे वाक्यों की पहली खूबसूरती उसकी स्मरणीयता और निहित मर्म का कालजयीपन है। ये अक्षय रोशनी या मशाल की तरह जलते हैं। ऐसे प्रज्ज्वलित विचारों के आलोक में मनुष्य ने अपने जीवन की दिशाएँ तय कीं। आत्मगौरव के साथ आगे बढ़ा, पतन की ओर खींच लेने वाले अंधकार से विश्वासपूर्वक लड़ा और संसार का सभ्य मानव बनकर जी सका। प्रस्तुत पुस्तक यर्थाथ की ज़मीन पर जनसाधारण के लिए समर्पित एक यथार्थवादी स्वर है। ऐसे विचारों को इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है, जो हताश, पराजित, और थके हुए शरीर में बल भरने वाले भावों का संचार कर सकें व मनुष्य को मनुष्य बनने का लक्ष्य दे सकें।

प्रतिश्रुति प्रकाशन, कोलकाता

पृ. 80; रु. 100.00





गूँजे-अनगूँजे

(काव्य-संग्रह)

डॉ. सरोज गुप्ता 'सरस्वती'

83 कविताओं के इस संग्रह में सभी कविताएँ हृदय से निकली संवेदनाएँ प्रतीत होती हैं। संपूर्ण काव्य कृति में सरसता, स्वाभाविकता, सजीवता के गुण एक साथ मिलते हैं। कठिन शब्दों से बचा गया है तथा भाषा प्रवाहमयी है। कविताओं में निरंतरता तथा सृजनात्मकता है। संग्रह में विभिन्न विषयों यथा—योग और स्वास्थ्य सूत्र, आज की नारी, कंप्यूटरीकृत संस्कृति, देशोत्थान के लिए, जीवन के रंग, नेचरोपैथी आदि सम्मिलित हैं।

उद्योग नगर प्रकाशन,
गाजियाबाद

पृ. 116; रु. 150.00



सम-सामयिकी

डॉ. मृणाल शर्मा

वर्तमान परिवेश में महिला सशक्तीकरण, सामाजिक न्याय, समकालीन परिदृश्य में गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता, भ्रष्टाचार, साहित्य एवं संस्कार, बालकों के आपराधिक व्यवहार, मानव और पर्यावरण आदि ऐसे विषय हैं जिन पर चिंतन किए जाने तथा उनके शोधपूर्ण विश्लेषण की नितांत आवश्यकता है। इस संग्रह में इन्हीं विषयों पर आधारित 12 लेखों को प्रकाशित किया गया है। जो वर्तमान परिवेश एवं परिप्रेक्ष्य में संगत प्रतीत होते हैं।

उद्योग नगर प्रकाशन,
गाजियाबाद

पृ. 100; रु. 150.00



समकालीन महिला ग़ज़लकार

संपादक : हरेराम 'समीप'

समकालीन हिंदी-ग़ज़ल के विकास में महिला ग़ज़लकारों की भूमिका उल्लेखनीय है। आज ऐसी अनेक महिला ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने ग़ज़ल की दुनिया में एक विशिष्ट पहचान बनाई है। हिंदी ग़ज़लों का यह महिला केंद्रित संकलन, पिछले चालीस वर्षों के ग़ज़ल-लेखन में महिला ग़ज़लकारों की रचनात्मक उपस्थिति को रेखांकित करता है। इस संकलन की ग़ज़लों में नारी मन की विभिन्न मनःस्थितियों की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें प्रेम, समानाधिकार, विद्रोह आदि विषयों पर ग़ज़लें हैं। ग़ज़लों में अंतर्मन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति भी हुई है।

गीतिका प्रकाशन,
बिजनौर

पृ. 144; रु. 300.00



फटे पन्ने

श्रीमती सुशीला जोशी

18 कहानियों के कहानी-संग्रह 'फटे पन्ने' में जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। 'परिया बाबा' कहानी में परिया पर्यावरण का प्रतीक है और पूरी कहानी प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत की गई है। 'हकदारी' में प्रोफेसर शोएब आलम तथा 'अनकही' कहानी में सरोज तथा रमेश की मानसिक स्थिति पाठक को उद्वेलित करती है। 'फटे पन्ने' कहानी मानवीय संवेदनाओं की डायरी के पन्नों को निर्ममतापूर्वक फाड़ने का प्रयास है। कहानियों की भाषा सरल, सहज तथा प्रभावपूर्ण है।

कुसुम प्रकाशन, मुजफ्फरनगर

पृ. 96; रु. 100.00

बात अभी ख़त्म नहीं हुई

क्षमा शर्मा

दस कहानियों के इस संग्रह में लेखिका क्षमा शर्मा ने भारतीय स्त्रियों के जीवन के विविध रूपों को दर्शाया है तथा ज़िंदगी की हर क्षण बदलती तस्वीर को किसी चित्रकार की तरह प्रस्तुत किया है। इन कहानियों में दुख, दर्द, प्रेम, बुढ़ापे का एकाकीपन जैसे विभिन्न विषयों को शामिल किया गया है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, इस पुस्तक में संकलित कहानियाँ अनूठी शैली और ताज़गी से भरपूर हैं। संग्रह की कहानियों के शीर्षक हैं—दादी, पदमा का सवाल, बात अभी खत्म नहीं हुई, जमुना जी तक, गिफ्ट, एक लिव इन, मैसेज, मंगलसूत्र, नगाड़ा बजा, मम्मी आ रही हैं।

वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

पृ. 110; रु. 275.00



उत्तर प्रदेश के राज्यपाल माननीय रामनाईक जी द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित पुस्तक 'लोक कला नवनीत' का लोकार्पण



राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा प्रकाशित 'लोक कला नवनीत' पुस्तक का लोकार्पण करते उत्तर प्रदेश के राज्यपाल माननीय रामनाईक जी, संस्कार भारती के संस्थापक योगेंद्र बाबा जी, पुस्तक के संपादक अयोध्याप्रसाद कुमुद, दीन दयाल शोध संस्थान के संगठन मंत्री अभय महाजन, स्रावस्ती सांसद दद्दन मिश्रा तथा संस्थान सचिव राम कृष्ण तिवारी तथा अन्य। राष्ट्र ऋषि नाना जी देशमुख के ग्रामोदय प्रकल्प ग्राम जयप्रभा ग्राम, जिला गोंडा, उत्तर प्रदेश में आयोजित अखिल भारतीय लोककला महोत्सव के समापन समारोह में माननीय राज्यपाल जी ने पुस्तक का लोकार्पण करते हुए संस्कार सक्षम समाज के निर्माण में लोक कलाओं का महत्त्व बताया। इस अवसर पर अनेक विधायक तथा क्षेत्रीय विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे।

हर असंभव में संभव तलाशना ही एक शिष्य का कर्तव्य है : शेखर सेन



"जो असंभव लगता हो, उसे संभव करने के तरीके तलाशना ही एक अच्छे शिष्य की विशेषता है, जिस तरह तीर को दूर तक फेंकने के लिए धनुष की प्रत्यंचा को उतना ही पीछे खिंचा जाता है, उसी तरह नृत्य कला में अपने गुरु, उनके गुरु और उनके गुरु के कार्यों को जानना कलाकार को आगे ले जाता है, जितना अतीत का अंवेषण करेंगे उतना ही आगे जाएँगे।" यह उद्‌गार थे कत्थक केंद्र के अध्यक्ष, प्रख्यात रंगकर्मी श्री शेखर सेन के, वे दिल्ली के चाणक्यपुरी स्थित कत्थक केंद्र में संपन्न, डॉ. चित्रा शर्मा की पुस्तक 'गुरु मुख से' के लोकार्पण समारोह में मुख्य अतिथि की आसंदी से बोल रहे थे।

इस आयोजन में प्रख्यात कत्थक गुरु सुश्री शोभना नारायण, कत्थक गुरु राजेंद्र गंगानी, पंडित जयकिशन जी महाराज और जाने माने साहित्यकार लीलाधर मंडलोई विशेष अतिथि थे।

चित्रा जी की इस पुस्तक में कत्थक के सभी घरानों के 17 गुरुओं के साक्षात्कार को प्रस्तुत किया गया है। लेखिका ने स्वागत उद्‌बोधन में कहा कि कत्थक उनके लिए इबादत है और गुरु उनके लिए ईश्वर। आज कत्थक का सम्मान, अस्तित्व और शास्त्रीयता सब कुछ गुरुओं के कारण है।

श्री लीलाधर मंडलोई ने इस अवसर पर कत्थक के संगतकारों पर भी इसी तरह के शोधपरक पुस्तक की आवश्यकता पर जोर दिया।

श्री राजेंद्र गंगानी ने कहा कि उनके गुरु कहते थे की कुछ लिखना नहीं है, सीधे दिल से याद करो तो कभी नहीं भूलोगे। उनका मत है कि कत्थक को वीडियो या स्काईप से नहीं सिखाया जा सकता, यह कला गुरु के साथ ही सीखी जा सकती है।

सुश्री शोभना नारायण का वक्तव्य 'कत्थक में आ रहे परिवर्तन, उसकी मौलिकता और शास्त्रीयता' पर केंद्रित है। उन्होंने कहा कि कत्थक में गत पाँच दशकों में कई प्रयोग हुए। पेश करने के ढंग और चमक भले ही अलग हो गई हो, लेकिन मूल आत्मा वही रही। उन्होंने कहा कि इस तरह की पुस्तकें आने वाले दिनों में इस बात का प्रमाण होंगी की पहले गुरु किस तरह सिखाते थे और आज कैसे। हमें हर पीढ़ी को, हर प्रयोग को सम्मान देना चाहिए।

पंडित जयकिशन महाराज ने कहा कि गुरु असल में अपने शिष्य के स्वभाव को बदलता है ताकि वह कला को भलीभाँति सीख सके।

कार्यक्रम का संचालन प्रांजल धर ने किया।

हरियाणा सृजन उत्सव



हरियाणा की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका 'देस हरियाणा' की ओर से कुरुक्षेत्र में 23-25 फरवरी, 2018 को हरियाणा सृजन उत्सव का आयोजन किया गया।

उत्सव में प्रदेश के कलाकारों का मार्गदर्शन करने के लिए देश के प्रबुद्ध साहित्यकार एवं संस्कृतिकर्मी पहुँचे और विभिन्न विषयों पर संगोष्ठियाँ हुईं। इस अवसर पर कबीर के दोहों व पदों की संगीतमयी प्रस्तुति भी की गई।

उत्सव का उद्‌घाटन प्रख्यात पंजाबी कवि सुरजीत पातर के द्वारा किया गया। उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि लेखक-साहित्यकार समाज की आँख होते हैं। शब्दों के माध्यम से वे समाज के उपेक्षित लोगों के दर्द को बयाँ करते हैं। गूँगे लोगों की आवाज़ बनते हैं। कला और साहित्य हर समय में यह काम करते आए हैं।

समारोह में 'देस हरियाणा' के सोलहवें अंक का विमोचन भी किया गया।

समारोह में राष्ट्रीय कवि सम्मेलन, 'नाट्य मंचन', 'हरियाणा की संस्कृति के विविध रंग', 'सृजन की चुनौतियाँ : किया क्या जाए', 'हरियाणा के दर्शकों की अभिरुचियाँ', 'साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ : सरोकार एवं प्रसार' आदि अनेक विषयों पर परिसंवाद भी किया गया।

डॉ. कमलकिशोर गोयनका डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान से समादृत

सकारात्मक हो साहित्य का स्वरूप : राज्यपाल श्री त्रिपाठी



'साहित्य का स्वरूप सकारात्मक होना चाहिए। वादों में बँटा हुआ साहित्य राष्ट्रीय एकता का संदेश नहीं दे सकता। मौन पीड़ा तो दो चार लोगों तक सीमित रहती है किन्तु मुखर पीड़ा अगर निवारण चाहती है तो डॉ. हेडगेवार जैसे राष्ट्रभक्त का जन्म होता है। व्यक्ति के साथ समाज की चिकित्सा का उद्देश्य लेकर चलने वाले डॉ. हेडगेवार के योगदान को राष्ट्र सदैव स्मरण रखेगा।' ये उद्गार हैं पश्चिम बंगाल के महामहिम राज्यपाल श्री केशरीनाथ जी त्रिपाठी के, जो श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के तत्त्वावधान में आयोजित 29 वें डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान में स्थानीय ओसवाल भवन सभागार में बतौर अध्यक्ष बोल रहे थे। पुस्तकालय की ओर से डॉ. कमलकिशोर गोयनका, नई दिल्ली को सम्मान स्वरूप श्रीफल, शॉल तथा एक लाख रुपये की राशि एवं मानपत्र प्रदान किया गया।

राज्यपाल श्री त्रिपाठी ने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि साहित्य को जाति और वर्गों में बाँटा जा रहा है। उसे वादों के घेरे में सीमित किया जा रहा है। आलोचनात्मक विवेचना स्वागत योग्य है, लेकिन विभाजित साहित्य घातक है।

प्रेमचंद विशेषज्ञ डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रज्ञा सम्मान ग्रहण करते हुए कुमारसभा पुस्तकालय का आभार व्यक्त किया एवं कोलकाता के साहित्यप्रेमी एवं साहित्यकारों की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि स्वराज की प्राप्ति और भारत की आत्मा की रक्षा करना ही प्रेमचंद के साहित्य का उद्देश्य था। डॉ. गोयनका ने प्रेमचंद को भारतीय विवेक, राष्ट्रीय अस्मिता के रक्षक, मानवीयता के संस्थापक, लोकमंगल के गायक भारतीय साहित्यकार के रूप में स्मरण किया तथा प्रेमचंद की कहानियों एवं रचनाओं द्वारा सप्रमाण विवेचन किया। उन्होंने वामपंथियों द्वारा प्रेमचंद की भ्रामक मूर्ति के प्रस्तुतिकरण को एकांगी बताते हुए उनके समग्र एवं वास्तविक स्वरूप के अध्ययन पर बल दिया। डॉ. गोयनका ने दृढ़ता के साथ कहा कि प्रेमचंद सही अर्थों में भारतीय परंपरा के वाहक साहित्यकार थे।

अन्य वक्ता गण डॉ. अवनिजेश अवस्थी, डॉ. जिष्णु बसु, प्रो. ब्रजकिशोर शर्मा एवं श्री सज्जन कुमार तुल्स्यान ने भी डॉ. हेडगेवार के उदात्त जीवन के बारे में प्रकाश डाला। कार्यक्रम का संचालन कुमारसभा के अध्यक्ष डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन चयनसमिति के वरिष्ठ सदस्य श्री विमल लाठ ने किया।

सोशल मीडिया मैत्री सम्मेलन

30-31 मार्च, 2018 को भारतीय राजदूतावास, नेपाल भारत मैत्री संघ, वीरांगना फाउंडेशन, काठमांडू तथा हम साथ-साथ एवं भारत की विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के संयुक्त तत्वावधान में छठे दो दिवसीय हम सब साथ-साथ सोशल मीडिया मैत्री सम्मलेन एवं सम्मान समारोह का भव्य आयोजन किया गया। समारोह का उद्घाटन मुख्य और विशिष्ट अतिथियों नेपाल प्रदेश (दो) के कानून एवं आंतरिक मंत्री श्री ज्ञानेंद्र यादव, भारतीय राजदूतावास काठमांडू के डी.सी.एम. डॉ. अजय कुमार, भारतीय वाणिज्य दूतावास के काउंसलर श्री वी.सी. प्रधान, पूर्व सांसद नेपाल श्री महेंद्र मिश्र, आदि के द्वारा दीप प्रज्वलित करके किया गया। इस अवसर पर सम्मानित अतिथियों के द्वारा भारत-नेपाल के संबंधों को और मजबूत बनाने एवं राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार प्रसार के लिए सबको और अधिक एकजुट होने की अपील की गई।

'बनारस की हिंदी ग़ज़ल' का लोकार्पण

25 मार्च 2018, को 'बनारस की हिंदी ग़ज़ल' पुस्तक का लोकार्पण प्रख्यात समालोचक डॉ. जीवन सिंह के द्वारा किया गया। इस अवसर पर उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि 'बनारस की ज़मीन पर बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया और कबीर भी यहीं पैदा हुए, कबीर की ग़ज़ल 'हमन है इश्क मस्ताना' से हिंदी में ग़ज़ल की एक धारा बही जो भारतेंदु, प्रसाद, रुद्र काशिकेय और त्रिलोचन से होते हुए आज तक आती है, हिंदी ग़ज़ल की विरासत और बनारस का समकालीन ग़ज़ल परिदृश्य 'बनारस की हिंदी ग़ज़ल' पुस्तक में उपस्थित है जिससे इस शहर की रचना भूमि की उर्वरता का पता चलता है। इस अवसर पर बौद्ध दर्शन और उसकी समकालीनता पर केंद्रित चर्चा सत्र का भी आयोजन किया गया।

विश्व पुस्तक दिवस का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत व अजीम प्रेमजी फाउंडेशन, पिथौरागढ़ के सहयोग से स्थानीय पी.जी. डिग्री कॉलेज, पिथौरागढ़ में अंतर्राष्ट्रीय विश्व पुस्तक दिवस पर 'इंटरनेट के दौर में मुद्रित अक्षर का भविष्य' विषय पर एक दिवसीय परिचर्चा का आयोजन किया गया। इस परिचर्चा में श्री बी. डी. कंस्याल, मुकुल भट्ट, महेश पुनेठा, रा.पु. न्यास, भारत की हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य डॉ. दिनेश चमोला तथा श्री देवेंद्र मेवाड़ी भी उपस्थित थे।

बाल साहित्य में लोकतंत्रात्मक मूल्य

श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति इंदौर तथा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के संयुक्त तत्वावधान में विश्व पुस्तक दिवस पर 'बाल साहित्य में लोकतंत्रात्मक मूल्य' विषय पर एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रख्यात बाल साहित्यकार डॉ. क्षमा शर्मा ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि "तकनीकी के बढ़ते इस्तेमाल, घटते जीवन मूल्य और उसके बीच बढ़ते बच्चे के लिए लिखना अपने आप में चुनौतीपूर्ण कार्य है। बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास के लिए अनिवार्य है कि समाज भी अपना दोहरा मापदंड बदले।" इस अवसर पर न्यास द्वारा प्रकाशित डॉ. मीनाक्षी स्वामी की पुस्तक 'बाँसुरी के सुर' का लोकार्पण जस्टिस वी.डी. ज्ञानी, डॉ. क्षमा शर्मा, श्री अष्ठाना आदि के द्वारा किया गया।



विमर्श को आगे बढ़ाते हुए वरिष्ठ बाल साहित्यकार विकास दवे ने कहा कि इस विषय पर पहली बार चर्चा हो रही है। हमारे यहाँ 'ना' कहने की परंपरा रही है और यही लोकतंत्र की सबसे बड़ी ताकत है। प्रख्यात लेखक वन्यायिक अधिकारी श्री अनिल वर्मा ने कहा कि अभी हमारे देश में लोकतंत्र बाल अवस्था में है और इसके परिपक्व होने के प्रति पूरी तरह आशान्वित होना चाहिए। उन्होंने बाल साहित्य में नए बिंबों और पात्रों को शामिल करने का सुझाव दिया। दिल्ली से आईं साहित्यकार व प्रकाशक सुश्री रेनू चौहान ने लोकतंत्र को परिभाषित करते हुए कहा कि हमारे माता-पिता और शिक्षक ही हमारे पहले लोकतांत्रिक मूल्य के शिक्षक होते हैं। गोष्ठी की अध्यक्षीय आसंदी से श्री अष्ठाना ने कहा कि बच्चों में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना करने में लेखकों व बाल साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हमें स्वयं अपनी तरफ देखना होगा कि हम इस दिशा में क्या कर रहे हैं? श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति के प्रधानमंत्री प्रो. सूर्य प्रकाश चतुर्वेदी ने आभार व्यक्त करते हुए बाल साहित्य पर गंभीरता से कार्य करने का सुझाव दिया। कार्यक्रम का संचालन रा.पु. न्यास के संपादक पंकज चतुर्वेदी ने किया।

लेखकों के लिए

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

लेखकों से निवेदन है :

1. सामग्री अधिकतम तीन हजार शब्दों तक हो
2. पहले से छपी सामग्री ना भेजें
3. रचना के साथ संदर्भ के चित्र आदि भी भेजें
4. लेखक का चित्र, **पाँच पंक्ति में परिचय (संपूर्ण जीवनवृत्त नहीं)** भेजें, जिसमें संप्रति, प्रकाशन, सम्मान आदि का विवरण हो। संपर्क के लिए पता, ई-मेल या फोन नंबर जो भी सार्वजनिक करना चाहें।
5. किसी विशेष अवसर की सामग्री कम से कम चार महीने पहले भेजें

सामग्री डाक से या ई-मेल से भेज सकते हैं। ध्यान रहे कि रचना कृति, यूनिकोड या फिर शिवा मीडियम फॉण्ट में एम.एस. वर्ड या पेजमेकर में ही हो।

संपादक (पुस्तक संस्कृति)

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2, नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-26707758, 26707876

द्विमासिक पत्रिका 'पुस्तक संस्कृति' के वार्षिक सदस्य बनें

वार्षिक सदस्यता शुल्क– अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.

पत्रिका का सदस्यता शुल्क भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्नांकित है :

Bank: **CANARA BANK**, Branch: **Vasant Kunj, New Delhi 110070**
A/C No.: **3159101000299**
IFSC CODE: **CNRB0003159**

इसके अलावा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय चेक, ड्राफ्ट या धनादेश भी भेजा जा सकता है।

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : _____

पता : _____

जिला : _____ शहर _____ राज्य _____ पिन कोड _____

फोन : _____ ई-मेल : _____

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) _____

वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) _____ ड्राफ्ट संख्या _____

बैंक एवं शाखा द्वारा जारी _____

भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)। सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय, सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक

पुस्तक संस्कृति

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, संस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,

नई दिल्ली-110070

ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

दूरभाष : 011-2670758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC CODE	CNRB0003159
MICR CODE	110015187

nbt.india
एकः सूते सकलम्

#हर हाथ एक किताब



go to https://goo.gl/ZUfqXI



राष्ट्रीय पुस्तक न्यास और स्नैपडील की संयुक्त पहल

'जरूरतमंद बच्चों को पुस्तकों का उपहार दें'

विशेष कार्यक्रम





₹ 250 में दस पुस्तकों का उपहार

Books are my best friends!

देश के हर जरूरतमंद पाठक तक राष्ट्रीय पुस्तक न्यास और स्नैपडील द्वारा प्रारंभ की गई योजना 'हर हाथ एक किताब' के माध्यम से देश के दूरस्थ अंचलों तक हजारों बच्चों को पुस्तकें पहुँच रही हैं। इस योजना के अंतर्गत देश का कोई भी नागरिक प्रति पुस्तक 25 रुपये की दर से कम से कम दस पुस्तकें दान कर सकता है। इसके लिए धनराशि वेबसाइट पर जमा की जा सकती है। इससे रा.पु. न्यास की पुस्तकें खरीदकर देश में बच्चों की पठन अभिरुचि के लिए काम कर रहे गैरसरकारी संगठनों तक पहुँचाने का कार्य स्नैपडील करता है। इस योजना के माध्यम से बच्चों तक पुस्तकें पहुँचाने या पुस्तकें लेने की इच्छुक गैरसरकारी संस्थाएँ इस वेबसाइट http://harhathekkitab.com/ पर विवरण पा सकती हैं। स्नैपडील से आप जो भी पैसे किताबों के दान के लिए ट्रांसफर करेंगे वह सीधे नेशनल बुक ट्रस्ट पर ट्रांसफर हो जाएँगे। एनबीटी 'हर हाथ एक किताब' योजना के लिए खरीदी जाने वाली पुस्तकों पर 23.5 प्रतिशत छूट दे रहा है।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

अशांत विश्व में भारत की सुरक्षा



जसजीत सिंह;

अनुवाद : **डॉ. परितोष मालवीय**

इस पुस्तक में यह बताया गया है कि भले ही शीतयुद्ध ने द्विध्रुवीय विश्व का निर्माण किया हो, भारत जैसे गुटनिरपेक्ष और चीन जैसे 'स्वतंत्र विदेश नीति' वाले देश के लिए यह महज एक बिखरी हुई द्विध्रुवीयता ही है। इस पुस्तक के अनुसार उत्तर शीतयुद्ध काल में, जटिल एवं तेज़ी से बदलते अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए भारत को किसी भी गुट में सम्मिलित होने से बचना चाहिए। चूँकि हम एक ऐसे विश्व में रह रहे हैं जो अब भी संक्रमण काल में है, हमारी सुरक्षा नीति को 'समग्र राष्ट्रीय विकास' के लक्ष्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए जिसमें हमारा ध्यान अपने ही लोगों पर केंद्रित हो क्योंकि 'शक्ति प्राप्त करना एक माध्यम मात्र है, अपने आप में अंत नहीं'। यह पुस्तक हमारे समय के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय सुरक्षा विशेषज्ञों में से एक के द्वारा भारत के जटिल सुरक्षा परिदृश्य का गहरा एवं विवेकपूर्ण अध्ययन है।

पृ. 172; रु. 190.00

लोककला नवनीत



(लोककला विषयक निबंध-संग्रह)

संकलन एवं संपादन :

डॉ. अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद'

भारत देश में लोकगीत, संगीत, नृत्य, परंपराएँ, कलाएँ आदि केवल प्रदर्शन या मनोरंजन का साधन नहीं हैं, वास्तव में ये समाज को सुगठित रूप से संचालित करने के सूत्र हैं। विभिन्न बोलियों-भाषाओं, अंचलों, संस्कारों वाले विविधता भरे हमारे देश में लोककलाएँ मानव सभ्यता के विकास की सहयात्री रही हैं। आधुनिक शिक्षा के प्रसार में पारंपरिक लोककलाएँ विलुप्त होती जा रही हैं, उन्हें अपने अस्तित्व और अपने पारंपरिक स्वरूप को बनाए रखने के संकट से जूझना पड़ रहा है। लोककला की विविध विधाओं से समाज को, विशेषकर नई पीढ़ी को परिचित कराना आवश्यक है। इस पुस्तक में देश के कई अंचलों के लोककला विद्वानों के आलेखों का संकलन कर लोक रंग के विविध रूपों की छटा प्रस्तुत की गई है।

पृ. 212; रु. 240.00

सृजनात्मक गणित



सीखने की विविध शैलियों पर आधारित गणित की पुस्तक

विजय प्रकाश

कई शिक्षुओं का गणित पढ़ने में बिल्कुल मन नहीं लगता है, उनके लिए तो यह हौवा ही होता है। प्रश्न यह है कि कैसे हम इन शिक्षुओं के लिए गणित को रोचक बना सकते हैं? कैसे हम सभी बच्चों में गणित के प्रति रुचि पैदा कर सकते हैं? प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशा में एक प्रयास है। पहाड़ा गणित का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ बच्चे सीखने या समझने की बजाए रट्टा मारना अधिक सुविधाजनक मानते हैं। इस पुस्तक में पहाड़े को रट लेने से बेहतर उसे विविध तरीकों से खेल-खेल में आत्मसात करने की विधि बतलायी गई है। तीलियों से पहाड़ा, गेंद से पहाड़ा सिखाते हुए गीत-गीत में पहाड़ा सिखाने का अभिनव उपक्रम भी इस पुस्तक में है। स्कूली बच्चे जहाँ स्वअध्ययन से गणित की पेचीदगी को आसान बना सकते हैं वहीं शिक्षक इस पुस्तक के सहारे बच्चों के मन से गणित का हौवा दूर कर सकते हैं।

पृ. 150; रु. 305.00

राजभाषा के रूप में हिंदी



निशान्त जैन

भारत के संविधान ने स्वाधीनता के बाद सन् 1949 में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। स्वाधीनता के उपरांत हिंदी की 'राजभाषा-यात्रा' कैसी रही, किन-किन पड़ावों से गुज़री और उसे कितने संघर्षों का सामना करना पड़ा या अब भी कर रही है, इन सभी आयामों पर प्रस्तुत पुस्तक में विचार किया गया है। इस पुस्तक में राजभाषा का अर्थ, उसकी अवधारणा और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसके विकास, क्षेत्र एवं आयामों की भी चर्चा की गई है। पुस्तक में हिंदी की संवैधानिक और वैधानिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक अनुवादकों, राजभाषा अधिकारियों, विद्यार्थियों और शोधार्थियों के साथ-साथ आम जन के लिए भी समान रूप से उपयोगी है।

पृ. 88; रु. 130.00

विज्ञान वेला में

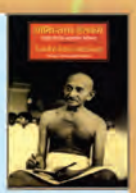


देवेंद्र मेवाड़ी

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कदम जितनी तेज़ी से बढ़ रहे हैं, उतनी ही तेज़ी से हमारे जीवन और समाज में परिवर्तन हो रहा है। विगत आधी सदी में ही हमारी दुनिया का चेहरा और हमारी जीवन शैली में भारी बदलाव आ गया है। दुनिया की आबोहवा इतनी बदल जाएगी, भला यह किसे मालूम था। लेकिन सच यह है कि बाहरी दुनिया के साथ-साथ विज्ञान हमारे अंतर्मन में भी दखल दे रहा है। प्रौद्योगिकी हमें सफलता के शिखरों तक पहुँचाने के साथ-साथ नितांत अकेलेपन की ओर भी धकेल रही है। 'विज्ञान वेला में' पुस्तक आपको इन तमाम परिवर्तनों से न केवल रूबरू कराती है अपितु सोचने के लिए भी विवश करती है।

पृ.200; रु. 230.00

गान्धि-तत्त्व-शतकम्



मङ्गेश-वेङ्कटेश-नाडकर्णिना विरचितम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत अपने प्रकाशन कार्य के अंतर्गत विभिन्न भाषाओं में देश का विशिष्ट साहित्य पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता रहा है। इस कड़ी में अब न्यास ने संस्कृत भाषा में भी प्रकाशन प्रारंभ किया है। इसकी शुरुआत पर्यावरणविद् तथा संस्कृत विद्वान डॉ. मंगेश वेंकटेश नाडकर्णी की महात्मा गांधी के विषय में पुस्तक 'गान्धि-तत्त्व-शतकम' के प्रकाशन से की गई है। इस पुस्तक में महात्मा गांधी के जीवनबोध तथा कृतित्व का सार 108 श्लोकों में वर्णित है। प्रत्येक श्लोक का अंग्रेज़ी पाठ तथा भावार्थ भी दिया गया है। न्यास द्वारा संस्कृत प्रकाशन की यह पहल देश में संस्कृत के उन्नयन का एक नया पथ प्रशस्त करेगी।

पृ. 68; रु. 90.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.

फोन : 011-26707761;

ई-मेल : nro.nbt@nic.in;

वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in

प्रबोधचंद्रोदय



हिंदी रूपांतर : **प्रताप सहगल**

'प्रबोधचंद्रोदय' ग्यारहवीं शताब्दी में श्रीकृष्ण मिश्र यति द्वारा लिखा और प्रताप सहगल द्वारा रूपांतरित किया गया एक ऐसा संस्कृत क्लासिक नाटक है, जो हमें भारतीय दर्शनों के संसार की यात्रा करवाते हुए प्रबोध की ओर ले जाता है। प्रबोध यानी अवेकिनंग। नाटक के पूरे घटना-चक्र के पीछे मुख्य बात है कि व्यक्ति को आत्मज्ञान या आत्मबोध कैसे हो? इस पूरे घटना-चक्र को एक रूपक के सहारे बुना गया है। अतः नाटक हमें दुर्वृत्तियों से सद्वृत्तियों की ओर जाने के लिए प्रेरित करता है। नाटक छह अंकों में विभाजित है।

पृ. 86; रु. 120.00

बाँसुरी के सुर



मीनाक्षी स्वामी; *चित्र* : **फजलुद्दीन**

बाँसुरी के सुर नामक पुस्तक नेहरू बाल पुस्तकालय पुस्तकमाला के अंतर्गत 9 से 11 आयुवर्ग के बच्चों के लिए प्रकाशित पुस्तक है जिसमें भूरा भालू तथा बालक संजीव के बीच मित्रता को दर्शाया गया है। कहानी में दिखाया गया है कि किस प्रकार बाँसुरी की सुरीली धुनों से माहौल में प्रेम एवं शांति की धारा बहने लगती है। पुस्तक रोचक चित्रों से भरपूर है।

पृ. 16; रु. 40.00